गुरु गोविन्द सिंह

राष्ट्रीय जीवनचरित

गुरु गोविन्द सिंह

गोपाल सिंह

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1201-4

पहला संस्करण : 1967

दूसरी आवृत्ति · 2000 (शक 1921)

Guru Govind Singh *(Hindi)*

रु. **20.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

मा
नानकी देवी को
जिनका जीवन गुरु के सान्निध्य मे बीता

वाह प्रगट्यो मरद अगमडा, वरियाम अकेला

—भाई गुरुदाससिंह

यह एक ऐसे महापुरुष की कहानी है, जिसने मानव जन्म धारण करके भी अपने अलौकिक चरित्र तथा ईश्वर की अनुकपा के कारण, अमरत्व प्राप्त किया; जिसने एक राजकुमार का जन्म लेकर भी फकीर का जीवन अपनाया। वे एक सत थे जिन्हे परिस्थितियो ने योद्धा बना दिया, पर हृदय से वे हमेशा संत ही रहे। उन्होने लड़ाइया लड़ीं और जीती, लेकिन कभी किसी की एक इंच जमीन पर भी क़ब्जा नही किया। उन्होने भारतवासियों को राष्ट्रीयता के आदर्श का बोध कराया — वह आदर्श था जीवन के छोटे से छोटे काम में भी परमात्मा के प्रति पूर्ण निष्ठा और समर्पण का भाव रखते हुए सासारिक कर्त्तव्यो और जिम्मेदारियो से मुंह न मोड़ना। वे धर्मगुरु बने और ईश्वर की तरह पूजे गये, लेकिन व्यक्तिपूजा का जैसा कड़ा विरोध उन्होने किया वैसा कभी किसी ने नही किया।

जो मो को परमेश्वर उचर है, सो नर नरक कुड मे पर है।
मैं हूं परमपुरुष को दासा, देखन आयो जगत तमासा।

वे शहीद के पुत्र थे और शहीद के परपौत्र। उन्होंने अपने को ही नही, अपने पुत्रो, माता और अपने को उनका आत्मीय कहने वाले सब लोगो को ईश्वर के चरणो मे न्यौछावर कर दिया। उन्होने उत्तराधिकार की परपरा का खंडन किया, और मानव इतिहास मे पहली बार, आध्यात्मिक और भौतिक अधिकार जनता को सौप दिये, जिसको वे उसका वास्तविक अधिकारी मानते थे। आत्मा के विवेक को ही उन्होने जीवन का मार्गदर्शक सिद्धांत माना। लौकिक कार्यों का उन्होंने आध्यात्मीकरण किया, और ऐहिक आशा आकांक्षाओ को धार्मिक स्वीकृति दी। किसी सिद्धात या धर्म के लिए मर मिटने के आदर्श का प्रचार करके जीवन की एक नयी व्याख्या की। जाति पांति, धर्म, सामाजिक स्थिति आदि के भेद भाव मिटाकर उन्होने नीच से नीच को भी सबसे उच्च कहलाने वालो के समकक्ष बनाया। पुरुष को उन्होने उसका खोया हुआ पौरुष लौटाया और नारी को उसका नारीत्व। एक धार्मिक अनुशासन की उन्होने स्थापना की। इसके लिए उन्हे काफी संघर्ष करना पड़ा। फिर भी, धर्म के नाम पर न तो उन्होंने भिन्न मतो का निरादर किया और न मनुष्य को मनुष्य से अलग किया।

देहुरा मसीत सोई, पूजा ओ नमाज़ ओही
मानस सबै एक, पै अनेक को प्रभाव है ।

उनके बाद फिर इस उपमहाद्वीप मे जनजीवन वैसा नही रहा । स्वतंत्रता का मंत्र हर एक के मानस मे गूंजने लगा था — स्वतंत्रता विदेशी शासन से ही नही, बल्कि अंधविश्वास, छल कपट, अहंकार और द्वेष आदि शूद्र प्रवृत्तियो से भी जो मनुष्य के पतन का कारण है ।

इतना सब कुछ उन्होने जीवन की एक ही अवधि, बयालीस साल की अल्प आयु में ही, कर डाला । यह ठीक है कि नानक पथ, दो शताब्दी पहले से ही, लाखों स्त्री पुरुषों को ब्रह्म के प्रति पूर्ण समर्पण, उदार विचार, आत्मचितन, आत्म शुद्धि, विनम्रता, सेवा भाव और आत्मत्याग तथा अपनी जीवन पद्धति और अपने धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने की सीख देता रहा था । लेकिन गुरु गोविन्द सिंह ने ऐसी शक्तियो का स्रोत मुक्त कर दिया जिनसे जीवन मे परिवर्तन आना अनिवार्य था । कहते हैं कि सभी धार्मिक आंदोलन वास्तव मे राजनैतिक होते हैं । यह सच है क्योंकि मानव आत्मा एक बार मुक्त हो जाये तो वह लौकिक या आध्यात्मिक किसी भी प्रकार का बंधन स्वीकार नही करती । नानक ने मानव आत्मा को पूर्ण मुक्त तो किया पर उसे अभी दौ सौ वर्ष तक मार्गदर्शन की आवश्यकता थी । गुरु गोविन्द सिह ने उसे आत्मनिर्भर होने की शक्ति दी, उसको आत्मगौरव और आत्मविश्वास दिया ।

सिखो के नवे गुरु, तेगबहादुर के इकलौते पुत्र गोविन्दराय का जन्म दिसंबर, 1666 मे पटना में हुआ । किसी 'ईश्वरीय आदेश' के पालन के लिए असम जाते हुए, गुरु तेगबहादुर ने अपने परिवार को कुछ दिनो के लिए पटना मे ठहरा दिया था । कहा जाता है कि एक धर्मनिष्ठ मुसलमान फ़कीर सैयद भीखनशाह ने सुदूर कोहराम मे अतरिक्ष में एक अद्‌भुत ज्योतिपुज देखा । उन्होने उसके आगे माथा नवा कर कहा, 'खुदावन्द ने इस जमीन पर कोई नयी रोशनी भेजी है' ।

उस पवित्र चेहरे के दीदार के लिए वह उस ज्योति की दिशा मे चलते गये । लंबी और कठिन यात्रा के बाद वह पटना पहुंचे । नवजात राजकुमार की परीक्षा लेने के इरादे से वह अपने साथ दो पात्र ले गये — एक मे दूध भरा था और दूसरे मे पानी । दोनों पात्रों को ढक कर उन्होने शिशु राजकुमार के आगे रख दिया और बोले, "अगर तुमने दूध वाला बर्तन छुआ तो तुम्हे मुसलमानो का पक्षपाती समझूंगा, और अगर पानी वाला बर्तन छुआ तो हिंदुओं का" । जब बालक ने दोनों ही बर्तनों पर हाथ रखे तो फ़कीर खुशी से चिल्ला उठा, "धन्य हो ! हिदू और मुसलमान दोनों के मालिक, धन्य हो ! इस मुल्क को तुम्हारी ही सबसे ज्यादा जरूरत थी" ।[1]

1. मैकलिफ कई सिख इतिहासकारों का कहना है कि भीखनशाह गांव फ़सदा मीरा, वर्तमान जिला करनाल, के रहने वाले थे और वही उन्होंने, अपने घर में, दिव्य ज्योति के दीदार किये थे ।

गोविन्द बचपन से ही, अपने पिता की तरह, बड़ी देर तक चिंतन किया करते थे। सस्कृत, हिंदी, पंजाबी, उर्दू और फ़ारसी उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से सीखीं। धनुर्विद्या और शिकार मे तो उन्हें विशेष दिलचस्पी थी।

कहते हैं कि पास के एक कुएं से पानी भरने के लिए जाने वाली युवतियो के मिट्टी के घड़ो को वह अपने निशाने बनाया करते थे। मा से उनकी शिकायत की गयी तो गोविन्द ने कहा कि ये औरतें तांबे के घड़े क्यो नही रखती ? औरतो ने तांबे के घड़े रखना शुरू किया, लेकिन वह उनको भी बड़ी कुशलता से मार गिराते रहे तो हार कर औरतों ने उधर जाना ही छोड़ दिया। मां ने सुना तो बहुत दुखी हुई, और बड़ी कोशिशो से उन्होंने गोविन्द की यह आदत छुड़वायी।

गोविन्द शारीरिक व्यायाम के खुद तो शौकीन थे ही, अपने साथियो को भी अपने साथ, या एक दूसरे से, कुश्ती लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। इसी बीच गुरु तेगबहादुर पजाब चले गये, लेकिन अपने परिवार को पटना मे ही छोड़ गये ताकि गोविन्द की शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा न पड़े।

लेकिन जल्दी ही गुरु तेगबहादुर को उन्हें आनन्दपुर बुलवाना पड़ा। पजाब के होशियारपुर जिले के मखोवाल गांव मे जमीन खरीदकर उन्होने यह शहर बसाया था। शिवालिक की पहाड़ियो से घिरा हुआ यह शांत एकांत स्थान ध्यान पूजा के लिए बहुत उपयुक्त माना गया।

लेकिन उनके सामने अब उससे भी बड़ी चुनौती थी। कश्मीर से ब्राह्मणो का एक प्रतिनिधि दल यह शिकायत लेकर आया कि वहां का मुगल शासक उन्हे बहुत सता रहा है और अब उनके सामने दो ही रास्ते हैं — या तो इस्लाम को स्वीकार करे और या मौत को। उन्होने गुरु से आग्रह किया, "आप ही इस कलिकाल मे हमारे स्वामी हैं। हम अपनी आत्मा की रक्षा के लिए और किसकी शरण मे जाये ? हमारी जाति की रक्षा अब आपके हाथों है; नही तो सम्मान के साथ जीना और अपने सनातन धर्म की रक्षा करना असंभव हो जायेगा"।

सोच विचार कर गुरु ने उनसे कहा, "जाओ, जाकर मुगल शासक से कहो कि अगर हमारे गुरु तेगबहादुर इस मामले मे अगुआ बनना स्वीकार कर लेंगे तो हम सब उनका अनुसरण करेगे। यदि वह नही मानेगे तो हम भी अपना प्राचीन धर्म नहीं छोड़ेंगे"। इस ललकारपूर्ण उत्तर से संतुष्ट होकर ब्राह्मणो का दल लौट गया। उस समय गोविन्द की आयु केवल नौ वर्ष की थी। जब गुरु ने अपनी पत्नी गुज्जरी से इसकी चर्चा की तो वे चितित हो उठी। वे जानती थी कि मुगल अधिकारियो को चुनौती देने का एक ही परिणाम होगा — उन पर घोर अत्याचार या मृत्यु दंड। और हुआ भी यही। कश्मीर के शासक द्वारा औरंगजेब[1] को गुरु का उत्तर सुनाया गया तो वह क्रोध के मारे आपे से

1. टिप्पणी — सभी वृत्तांतों से पता चलता है कि औरगजेब धर्मनिष्ठ और रागरग से विमुख होते हुए भी बेहद धर्मांध, हठी और निर्मम था। उसने अपने राज्य में सगीत बंद करा दिया था और कवियों के भते में कटौती कर दी थी। उसने सोमनाथ, बनारस, और मथुरा आदि के कई मदिरों को तोड़ने

बाहर हो गया। उसने तुरत हुक्म जारी किया कि गुरु को गिरफ्तार करके उसके आगे पेश किया जाये। उसके बाद गुरु को शीघ्र ही आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। जब उनकी पत्नी ने पूछा कि हमे किसके भरोसे छोड़े जा रहे है, तो गुरु ने कहा, "ईश्वर और गोविन्द के भरोसे"। उन्होने गोविन्दराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया, और अपने अनुयायियों से उनके आदेशो का पालन करने को कहा।

शीघ्र ही गुरु तेगबहादुर को गिरफ्तार कर लिया गया। कारावास मे उन पर तरह तरह के अत्याचार किये गये और अंत मे, इस्लाम धर्म को स्वीकार न करने के अपराध पर, दिल्ली के चांदनी चौक मे उनको फांसी दे दी गयी। मृत्यु के समय भी वे शात थे और अतिम क्षण तक ईश्वर का गुणगान करते रहे। उनका कहना था कि जो अपरिहार्य है उसके लिए दुख क्यो किया जाय। जो जन्म लेता है, वह मरता भी है —

चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होय,
ए मारग संसार को, नानक थिर नहि कोय।

गुरु की मृत्यु पर उनके पुत्र ने उनको श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा —

"उन्होने अपने खून से हिदुओ के तिलक और यज्ञोपवीत की रक्षा की। इस कलिकाल मे यह कितना अद्भुत काम हुआ। उन्होने अपने प्राण दे दिये लेकिन इज्जत नही दी"।

का आदेश देते हुए अपने अधिकारियों के नाम फरमान जारी किये। काफी खा के कथनानुसार उसने सिखों के मदिरों को भी तोड़ने और गुरु के भक्तों से भेंट वसूल करने के लिए नियुक्त मसन्दों को नगर से निकाल देने का हुक्म दिया। हिंदू त्यौहारों और मेलों पर उसने रोक लगायी, और हिंदुओं को सरकारी अफसरों के पद पर रखना भी बद कर दिया। 1590 में जारी किये गये आदेश के अनुसार हिंदूओं का पालकी में जाना या अरबी घोड़ों पर सवारी करना भी अपराध घोषित किया गया। हिंदुओं को अपने माल पर दुगना कर देना होता था। (मोहम्मद लतीफ हिस्ट्री ऑफ पजाब, कलकत्ता, 1890, पृष्ठ 176) अपने पिता को उसके जीवन के अतिम दिनों मे सात साल तक बदी बना रखने के अपराध पर पर्दा डालने के लिए ही शायद उसने कट्टर धार्मिक बनने का ढोंग रचा। उसने हिंदुओं पर ही जजिया नही लगाया, शिया मुसलमानों पर भी नाना अत्याचार किये। अपने परपितामह अकबर की उदार नीति को उसने बिल्कुल उलट दिया। पिता के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार करने और तीन भाइयों की हत्या करवाने के कारण मक्का के शरीफ भी उससे नाराज थे और उन्होने उसकी भेंट को अस्वीकार कर दिया था। औरगजेब ने अपने को आलमगीर घोषित किया तो ईरान का शाह भी, जो शिया था, बहुत आशकित हो गया, और उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की धमकी दी थी। शाह ने अपने दरबार में औरगजेब के दूत की दाढ़ी, एक सेवक द्वारा जलवा दी। बाद में औरगजेब ने पवित्र मक्का के धर्मरक्षकों को सोना देकर खरीद लिया। कुछ छोटे मोटे हिंदू राजाओं को, जो कि या बहुत छोटे थे या बहुत हठी, उसने छोड़ दिया। उनमे से कुछ ने तो नजराना देकर अपनी जान छुड़ायी और कुछ ने उसकी फौज में काम करना स्वीकार किया। बाकी सभी उससे घृणा करते थे। यद्यपि उनमें से काफी लोगों ने अत्याचार से बचने के लिए, इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। (श्री जे एन. सरकार द्वारा लिखित पुस्तक "औरगजेब" देखिये)

भीड़ भाड़ और कोलाहलपूर्ण दिल्ली मे गुरु का शव कुछ दिनो तक पडा रहा । मुगल बादशाह के डर के कारण कोई भी उसे उठाने नही आया । लेकिन एक दिन मौका पाकर, छोटी जाति के दो व्यक्ति शव को उठा ले गये । एक ने सिर लिया और दूसरे ने धड़ । उनमे से एक, जो दिल्ली का भिश्ती था, उस शहीद के पावन शरीर को अपने गांव रायसीना मे ले गया, जो दिल्ली के पास ही था । उसने अपने झोंपड़े में आग लगा दी ताकि अदर रखा हुआ गुरु का शव उसी के साथ जल जाये और किसी को कानोकान खबर न हो । इस प्रकार उसने, बड़ी श्रद्धा से, गुरु के पार्थिव शरीर की दाह क्रिया की । दूसरा आदमी रगरेज था । वह गुरु के शीश को गुरु गोविन्द के पास आनन्दपुर ले गया, जहा विधिपूर्वक उसे अग्नि की भेट किया गया ।

कहा जाता है कि जब उनके पिता द्वारा रचित एक दोहा उन्हे सुनाया गया —

तिलक जजू राखा प्रभु ताका, कीनो बडो कलू मे साका ।
बल छुटक्यों बधन परे, कछ न होत उपाय ।
नानक अब गहे ओट हर, गज ज्यो होत सहाय ।

तो उन्होंने दोहे मे ही इसका उत्तर दिया ।

बल होआ बधन छूटे, सब किछु होत उपाय ।
नानक सब कुछ तुम्हरे हात मे, तुम ही ह्वात सहाय ।

(धर्म ग्रथो के अनुसार तो यह दोहा गुरु तेगबहादुर का रचा हुआ है, और जनश्रुति के अनुसार गुरु गोविन्द सिह का ।)[1]

---

1 अपनी आत्मकथात्मक कविता "विचित्र नाटक" में गुरु गोविन्द सिंह ने अपने सोढी गोत्र वालों को लव का वशज बताया है । कहते है कि उस वश के योद्धा महापराक्रमी कालकेतु ने सनौढ के राजा की बेटी से शादी की थी । उनका पुत्र सोढीराय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और उसका वश सोढी कहलाया । गुरु नानक के गोत्र बेदी के विषय में गुरु गोविन्द सिह का कहना था कि वे कुश के वशज थे, जो सोढियों द्वारा पजाब स भाग दिय जाने पर काशी में जाकर बस गये थे । वहा उन्होंने वेद का अध्ययन किया और 'वेदी' या 'बेदी' कहलाने लगे । गुरु गोविन्द सिंह के अनुसार वे अपने पूर्वजन्म में योगी थे, और तपस्या के लिए हिमालय में हेमकुड नामक स्थान पर गये जहा से सात पर्वत चोटिया दिखायी देती है । कहते है कि वहा पहुच कर वह धरती पर वापस नही आना चाहते थे । परमेश्वर के साथ आत्मसात् हो जाना चाहते थे । लेकिन ईश्वर का आदेश कुछ और था । उसने कहा, "मैने अपने पुत्र के रूप में तुम्हारी सृष्टि की है । मेरे पथ को ससार के सामने उजागर करो, धर्म का प्रचार करो, धर्मात्माओं की रक्षा करो और अनाचारियों को दड दो" ।

गुरु गोविन्द सिंह के व्यक्तित्व के जितने भी वर्णन मिलते है उनसे जान पड़ता है कि वे तीखे नैन नक्श वाले, लबे, छरहरे और सुदर्शन पुरुष थे, और राजकुमारो के समान बढ़िया कीमती वस्त्र पहनते थे । पगड़ी पर कलगी और पख, तीर, धनुष, तलवार, ढाल, भाल आदि धारण करते थे और शस्त्रों से सुसज्जित रहते थे । उनका सबसे प्यारा घोड़ा सुरमई रग का था, और जब गद्दी पर बैठते थे या शिकार खेलने जाते थे उनके बायें हाथ पर बाज बैठा होता था ।

2

हम ए काज जगत मो आए, धर्म हेत गुरुदेव पठाए।
जहां तहां तुम धर्म बिदारो, दुस्ट दोखयन पकड़ पछाड़ो ॥
–'विचित्र नाटक', गुरु गोविन्द सिंह

पिता के वीरगति प्राप्त करने के बाद, गुरु गोविन्द सिंह ने सिख धर्म मे क्रांतिकारी परिवर्तन करने का संकल्प किया। मुगल साम्राज्यवादियो के खिलाफ हथियार उठाने के अलावा अब दूसरा कोई चारा न था। वास्तव मे, उनके पितामह, छठे गुरु हरगोविन्द ने भी, गुरु अर्जुन के बलिदान के बाद, इसका प्रयत्न किया था। लेकिन उनके बाद सिख धर्म फिर शात और मौन हो गया था। गुरु नानक के बाद गद्दी के अधिकार के लिए उनके निकट संबंधियो मे कलह होने लगे। षडयंत्र रचे जाने लगे। कुछ लोग तो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए, मुगल हुकूमत को अपनी तरफ मिलाने से भी नही हिचके। नतीजा यह हुआ कि विदेशी हुकूमत के खिलाफ एक होकर, दृढ़ता से सघर्ष करने का अवसर हाथ से जाता रहा। बादशाहों ने भी गुरु के रिश्तेदारो का साथ दिया। उन्होने चालाकी से यह जान लिया कि गुरु के रिश्तेदारों को आपस में भिड़ा कर, उन्हें कमजोर और प्रभावहीन बनाने से जितनी सफलता मिलेगी उतनी खुले सैनिक सघर्ष से नही मिल सकती। गुरु गोविन्द सिंह के जमाने मे 'मसन्द' कहलाने वाले उनके प्रतिनिधि, जिन्हें भक्तों से भेंट की वसूली के लिए नियुक्त किया जाता था, इतने ताकतवार हो गये थे कि वे यह समझने लगे थे कि गुरुओ को बनाना या मिटाना उनके हाथो में है। भक्तों द्वारा भेट में दी गयी अधिकांश वस्तुएं वे अपने पास रख लेते थे। यही नही, वे अपनी पूजा भी करवाते थे। कहा जाता है कि गुरु अमरदास ने, अपनी बेटी की भक्तिपूर्ण सेवा का ऋण चुकाने के लिए, उत्तराधिकार को अपने घर तक ही सीमित रखने का संकल्प किया था। तब से ही गद्दी के उत्तराधिकारियों को उनके रिश्तेदारों ने चैन नहीं लेने दिया। आध्यात्मिक महिमा, समर्पण और त्याग के जीवन का आकर्षण नही। जो गद्दी के सम्मान के लिए चुने जाते थे उनमे ये गुण कूट कूटकर भरे होते थे।

यह एक चमत्कार ही है कि एक नौ वर्ष का पितृहीन बालक, जो एक सशक्त साम्राज्य की शत्रुता, रिश्तेदारों की दुष्टता और धार्मिक प्रतिनिधियों के षड़यत्र से घिरा हो, इन सारी विरोधी शक्तियों को मिटा देने की बात भी सोचे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि

वह इतने कम जीवनकाल मे ही समझ गये थे कि वह क्या करना चाहते हैं । यह आकांक्षा ही उनके विचारो की जननी बनी, और विचारो को उन्होने यथार्थ का रूप दिया । गुरु के विरुद्ध इतनी दुर्जेय शक्तिया तैयार खड़ी थी, पर उनके पक्ष मे भी बहुत सी बाते थी ।

भारत, लका, अफगानिस्तान, तिब्बत और मध्य एशिया में जहां भी नानक का पवित्र नाम पहुचा था, गुरु के अनुयायी दूर दूर तक फैले हुए थे । उनके सभी अनुयायियों को उनसे इतना प्रेम था कि वे नियमपूर्वक भेंट पूजा चढ़ाया करते, साल मे कम से कम एक बार उनके दर्शन के लिए जाते और गुरु के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए तैयार रहते । उनके अनुयायियों में अधिकतर तो किसान, छोटे मोटे कारीगर और व्यापारी थे, लेकिन कुछ राजा और अमीर सौदागर भी थे । उन सबका एक ही लक्ष्य था — गुरु के आशीर्वाद से मुक्ति प्राप्त करना । गुरु चाहते थे कि मसन्द जैसे मध्यस्थों की परवाह न करके, इन्ही लोगों का एक सुगठित, दृढ़-संकल्प और त्याग की भावना से पूर्ण दल संगठित करे जिनमें राष्ट्रीयता और आध्यात्मिक आशा की भावना भरी हो । इसलिए उन्होने अपने सब अनुयायियों से कहलवाया कि जब वे गुरु के दर्शन के लिए जाये तो सीधे गुरु को ही भेंट चढ़ायें । उनसे यह कहा गया कि भेट में रुपयो और वस्त्रो की बजाय, जहा तक हो सके, घोड़े और हथियार दें । उन्होने एक छोटी सेना को भी तैयार करना शुरू किया, और उसमें पेशेवर लोगो को भी लेने लगे । जो लोग उनके साथ रहते थे उनके लिए आत्मा की उन्नति के साथ साथ शारीरिक व्यायाम करना भी जरूरी बना दिया गया । उन्होने एक बहुत बड़ा नगाड़ा बनवाया जिसको सुबह शाम राजकीय प्रतीक के तौर पर बजाया जाता था । शिकार गुरु का नित्य कर्म हो गया । तरह तरह के शस्त्रों को चलाने का भी वे अभ्यास किया करते । लेकिन, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उन्होंने कभी एक क्षण के लिए भी, न अपने अनुयायियों की आध्यात्मिक शिक्षा और अनुशासन की उपेक्षा की और न अपनी । संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, पंजाबी आदि के तो वे विद्वान हो गये, और इन भाषाओं में सारे धर्म शास्त्रों, पुराणो आदि का अध्ययन कर डाला । अपने अनुयायियों को भी उन्होंने यही प्रेरणा दी । सुबह और शाम प्रार्थना होती थी, ताकि मन परमेश्वर के साथ एकस्वर रहे और जो भी सांसारिक काम किये जायें उनमें उसके प्रति पूर्ण समर्पण की भावना हो ।

शिवालिक की पहाड़ियो के कुछ इलाको के सरदार, विशेषकर कहलूर के राजा भीमचन्द, गुरु की हरकतो से घबरा गये । स्थिति को ताड़ कर मसन्द लोग गुरु की मा के पास पहुंचे और उनसे आग्रह किया कि वे नगाड़ा बजाना, पेशेवर सैनिकों को सेना में रखना आदि युद्ध जैसी हरकतों को बंद करवा दे और वे गुरु से कहें कि वे अपना सारा समय अपने अनुयायियों की आध्यात्मिक शिक्षा मे ही लगायें ।[1] मसन्दों को यह

1. इस संबंध में सिख इतिहासकारों ने लिखा है कि कुछ सन्यासियों ने गुरु के पास जाकर उनकी भर्त्सना की कि वे अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बताते हुए भी ऐश्वर्य में रहते हैं । गुरु ने कहा, "मेरे सिख सांसारिक धन वैभव के सुख से अपने को वचित नही करेंगे, लेकिन हृदय में वे इन सबसे विरक्त होंगे" ।

भी डर था कि गुरु की यह हरकते कही किसी दिन उनके लिए ही खतरा न बन जाये। इस कारण उनकी यह सलाह स्वार्थ से खाली नही थी।

लेकिन गुरु ने अपनी मा की अनुनय पर ध्यान नही दिया। इसी बीच असम से एक सिख रतनराय गुरु के लिए बहुत कीमती भेटे लाया, जिनमे एक सधा हुआ हाथी था जो बहुत से करतब कर सकता था, एक शस्त्र था जो पाच किस्म के शस्त्रो का काम दे सकता था, सोने के साज सामान से लैस पाच घोड़े, एक सिहासननुमा चीज जिसमे से कठपुतलियां निकल कर शतरज खेलती थी, और बहुत से कीमती जेवर और कपड़े थे। सिख इतिहासकारो ने लिखा है कि रतनराय असम के राजा राजाराम का पुत्र था जो गुरु तेगबहादुर की असम यात्रा के समय उनका बहुत बड़ा भक्त बन गया था। कहते हैं कि राजाराम गुरु के दर्शनो के लिए गया और अपने साथ, अपनी तथा अपने परिवार की श्रद्धा के प्रतीक के रूप मे अनेक बहुमूल्य उपहार ले गया।

यद्यपि गुरु की बढ़ती हुई शक्ति से कहलूर के राजा को चिंता हो गयी थी, उनके सलाहकारो ने उनको गुरु से दोस्ती बनाये रखने की सलाह दी। उनकी सलाह मान कर राजा गुरु से मिलने गया। लेकिन उसने गुरु के दरबार की शान शौकत, उनके अनुयायियो की भारी सख्या और बढ़ती हुई सैनिक शक्ति देखी तो ईर्ष्या से जल उठा। घर पहुंचकर उसने ऐसी चाल सोची जिससे गुरु अपनी संपत्ति का कुछ भाग उसे दे दें। इसमें सफलता न मिली तो गुरु के बढ़ते हुए प्रभाव को दबाने के लिए उनसे युद्ध ठानने की सोची। उसने गुरु के पास अपना दूत भेजकर असम से मिले कीमती उपहार मगवाये। कारण यह बताया कि श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतेहचन्द की बेटी के साथ उनके बेटे की सगाई हो रही है, और इस मौके पर, वह अपने वैभव का प्रदर्शन करना चाहता है। गुरु ने उसकी चाल समझ ली, और चीजे देने से इंकार कर दिया। राजा ने अपने एक और अधिकारी द्वारा दुबारा सदेश भिजवाया और उससे यह भी कह दिया कि इंकार करने पर गुरु को युद्ध की धमकी दे। गुरु ने उसका भी तिरस्कार किया। मसन्दो ने गुरु की मां से बातचीत की, और उनके द्वारा गुरु को राजाओ से लड़ाई छिड़ जाने का भय दिखाया। लेकिन उनकी कोशिशे भी असफल रही।

दूसरे पहाड़ी सरदारो ने इस द्वेष की आग को भड़काने के लिए दोनों पक्षों के समर्थक बनने का ढोंग रचकर के, एक को दूसरे के खिलाफ उकसाया। उनको यह भी सुझाया कि सशस्त्र संघर्ष के अलावा दूसरा उपाय नही है। क्रोध से आग बबूला होकर राजा ने एक बार फिर गुरु की दौलत हथियाने की कोशिश की। उसने एक और राजकुमार से कहलवाया कि गुरु द्वारा इंकार राजा की सत्ता और अधिकार को चुनौती समझी जायेगी, और उनको इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। गुरु ने भी उसके ही स्वर में उत्तर दिया और युद्ध की तैयारियां करने लगे।

उन्ही दिनो नाहन के राजा ने गुरु को अपने घर आने और दून घाटी मे शिकार खेलने का न्यौता भेजा । कहते है कि गुरु को निमत्रित करने का असली कारण यह था कि वह राजा श्रीनगर के राजा फतेहसिह का विपक्षी था, और चाहता था कि यदि उस पर हमला हुआ तो उसको गुरु की सहायता प्राप्त हो । गुरु ने निमत्रण स्वीकार कर लिया और अपने परिवार तथा पांच सौ सशस्त्र आदमियो को, जिनमे से अधिकाश 'उदासी' थे, साथ लेकर चल पड़े । आनन्दपुर की सुरक्षा के लिए वह काफी गारद छोड़ गये थे । नाहन के राजा और गुरु की भेट का बहुत अच्छा परिणाम हुआ । वहा के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और, पओंटा के निकट यमुना के किनारे अपना पड़ाव डाल दिया । राजा गुरु के व्यक्तित्व और शौर्य से, तथा सिखो के अनुशासन, आत्म समर्पण और ईश्वर मे उनके अडिग विश्वास से इतना प्रभावित हुआ कि उसने गुरु गोविन्द से और ज्यादा दिनो तक ठहरने का अनुरोध किया । उसने गुरु और उनके साथियो के ठहरने के लिए एक दुर्ग बनाने का वचन दिया । गुरु के साथियो ने राजा का प्रस्ताव स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया । उनका उद्देश्य था आनन्दपुर के आसपास के विद्वेषपूर्ण वातावरण से छुटकारा पाना ।

इसी बीच श्रीनगर का राजा फतेहशाह भी, गुरु की प्रशसा सुनकर, उनके दर्शन करने आया । नाहन के राजा से उसकी नही बनती थी । गुरु ने बीच बचाव किया और उन दोनो में सुलह करवा दी । गुरु आसपास के जंगलो मे शिकार खेलने जाते थे । एक बार तलवार और ढाल से ही उन्होने एक बड़े शेर को मार डाला । दोनो राजा इससे बडे प्रभावित हुए । यही पर, निकट के सढौरा के सैयद बुधूशाह, जो अपने संतस्वभाव के कारण प्रसिद्ध थे और जिनके बारे मे हम आगे और सुनेगे, गुरु से मिलने आये । उन्होने गुरु की सेवा के लिए पाच सौ पठानों को भी भेजा जो मुगल सेना से निकाल दिये गये थे ।

यही पओंटा मे ही गुरु ने अपनी अधिकाश वीररसपूर्ण और भक्तिपूर्ण कविताए लिखी, जिनका बाद मे 'दशम ग्रथ' के नाम से सग्रह हुआ । भीमचद और अन्य लोगो को दूसरे रास्ते से जाने को कहा ताकि दोनो पक्षो के लोग भड़क न उठे । उस समय तो राजा मान गया पर उसके अहकार को बहुत चोट पहुंची, और उसने उसी समय शपथ ली कि विवाह के बाद वह इसका बदला लेगा ।

बारात श्रीनगर पहुची तो वरपक्ष के लोगो ने कन्यापक्ष द्वारा गुरु के उपहारों को स्वीकार कर लेने पर बहुत आपत्ति की । फतेहशाह से भी यह कह दिया कि अगर गुरु के खिलाफ लड़ने में उसने अन्य राजाओ का साथ न दिया तो उसकी कन्या का ब्याह भीमचन्द के पुत्र के साथ नही हो सकेगा । गुरु के आदमी चिढ़कर वहां से लौट आये । रास्ते में भीमचन्द की फौजो ने उन्हें रोका और लूटने की कोशिश की, लेकिन गुरु के सैनिकों ने उनके कदम न जमने दिये ।

पओटा तो वे सकुशल पहुच गये, लेकिन वहां जाकर मालूम हुआ कि पहाड़ी सरदार, गुरु की वापसी में, उन पर बड़ा हमला करने की तैयारी कर रहे है । गुरु ने सुना तो उन्होने अपनी सेना को छः मील आगे, मंगानी नामक स्थान की ओर बढ़ा लिया । और पहाडी सरदारों के संयुक्त हमले की प्रतीक्षा करने लगे । सिख सेनाओ को आगे बढ़ने का हुक्म मिला तो उनमे बड़ा जोश भर उठा ।

यह सोचकर कि गुरु उन्ही के ऊपर भरोसा किये बैठे हैं, पठानों ने उनका साथ छोड़कर दुश्मनों से जा मिलने का निश्चय किया । उनको विश्वास था कि इस संकट के समय ऐसा करने से उनको इनाम मे बहुत सा धन प्राप्त होगा । गुरु ने उनको समझाने बुझाने की कोशिश की, लेकिन वे लोग टस से मस न हुए । गुरु ने बुधूशाह को कहला भेजा कि उनके आदमियों ने उन्हें कैसा धोखा दिया । यह सुनकर बुधूशाह को इतना दुख हुआ कि वह अपने चार बेटों, एक भाई और सात सौ सिपाहियों को लेकर गुरु की सेवा में पहुंच गया ।

गुरु ने पांच सौ 'उदासियों' को, जो उनके साथ थे, युद्ध की तैयारी करने का आदेश दिया ।

लेकिन उनके सरदार कृपाल के सिवा बाकी सब अपनी जान बचाकर भाग निकले । युद्ध सिर पर आ पहुंचा था । भयानक युद्ध हुआ । बुधूशाह के रिश्तेदारो और सैनिकों ने सिखों की तरह ही बड़ी वीरता से युद्ध किया । महंत कृपाल ने अपनी गदा से दुश्मनो का कचूमर बना दिया, और गद्दार पठान सरदार हयात खां को मौत के घाट उतारा । बनारस के रामसिंह नाम के एक सिख द्वारा बनायी तोप का इस्तेमाल भी गुरु ने किया । लालचन्द नाम का हलवाई, जिसने हथियारों को उठाना भी नही सीखा था, इतनी बहादुरी से लड़ा कि सीखे सिखाये पठान सैनिक भी दग रह गये । लालचन्द ने कई पठानो को मौत के घाट उतारा । वीर राजा हरिचन्द वीर गति को प्राप्त हुए । गुरु का रिश्ते का भाई संगाशाह और पीर बुधूशाह के दो पुत्र मारे गये । लेकिन दुश्मनों को इतनी भारी हानि पहुंची कि उनमें भगदड़ मच गयी । गुरु ने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए पीर बुधूशाह को कृपाण, कंघा, अपने कुछ टूटे हुए केश और पगड़ी भेंट की ।[1] नाभा में ये वस्तुएं आज भी पवित्र स्मृति चिह्नों के रूप में संजोकर रखी हुई हैं ।

---

1. "विचित्र नाटक" में गुरु ने, बड़े ओजपूर्ण पद्य में, भंगानी, और उसके बाद हुए नाडौन के युद्ध और उनके खिलाफ दावा खां, हुसेन खां और सम्राट के पुत्र, जिसने मिरजा बेग को अपनी ओर से भेजा था, (बाद में बहादुर शाह के नाम से ज्ञात) द्वारा युद्ध की तैयारियों का वर्णन किया है ।

3

इनही की कृपा के सजे हम है, नहि तो मो से गरीब करोड़ परे

—गुरु गोविन्द सिंह

पओटा मे लगभग तीन वर्ष (1684-87) रहने के बाद गुरु आनन्दपुर लौट गये। रास्ते मे नाहन का राजा भी उनका स्वागत करने नही आया, जैसी कि उससे आशा थी। उसे अपने बधु राजाओ के आक्रोश का डर था जो गुरु की सेना द्वारा बुरी तरह पिटे थे। लेकिन आनन्दपुर के निवासियो ने उनका बहुत हार्दिक स्वागत किया। गुरु ने वहा एक दुर्ग बनाया और उसके चारो ओर मजबूत और ऊचा परकोटा बनवा दिया।

गुरु के दर्शन के लिए दूर दूर से सिख आते थे। सत योद्धा के रूप मे उनकी प्रसिद्धि अनेक वीर युवक, कवि, सगीतज्ञ और धर्मनिष्ठ लोगो को उनकी ओर आकर्षित करने लगी। शिकार का कार्यक्रम फिर पूर्ववत् चलने लगा, और जो सिख पहले कभी कभी रास्ते से भटक जाया करते थे, वे अब बहुत उत्साह प्रगट करने लगे। नयी विजय ने उनमे नया उत्साह भर दिया था, और गुरु के नियत्रण रखने पर भी कभी कभी उनका आचरण शिष्टता की सीमा को पार कर जाता — खासतौर से जब उनको दाम देने पर भी घोड़ो के लिए दाना, बकरी या मास न मिलता। इससे गुरु को बहुत दुख होता।

राजा भीमचद अपनी हार और गुरु की बढ़ती हुई शक्ति के प्रति ईर्ष्या से बौखलाया हुआ तो था ही, उसको अपने राज्य मे अपनी स्थिति बनाये रखने की भी चिता थी। उसने अपने सलाहकारो से सलाह मशविरा किया कि गुरु के बढ़ते हुए प्रभाव को किस प्रकार दबाया जाये। उसके सलाहकारो ने गुरु से सुलह करने की राय दी। उनका विचार था कि इससे शाति भी बनी रहेगी और आवश्यकता पड़ने पर, मुगलो के खिलाफ, सयुक्त मोर्चा भी खड़ा किया जा सकेगा।

तुरंत ही गुरु के पास सदेश लेकर दूत भेजा गया। गुरु ने उदारता से उसका उत्तर दिया जैसी कि उनसे आशा थी। उन्होने कहा, "मेरा किसी के साथ झगडा नही है। मै केवल धर्म का प्रचार करने के लिए शांति चाहता हू। मेरे पिता ने हिदुओ के धर्म की रक्षा के लिए अपने सिर की बलि चढ़ायी थी। मैं इस मरणासन्न जाति में नये प्राण फूंकने की कोशिश करता हूं तो हिदू सरदार मेरे साथ सहयोग नही करना चाहते। यही नही, अकारण ही मेरे ऊपर हमला किया जाता है। मेरे साथी आसपास के गांवो से रुपये देकर भी अपनी जरूरत की चीजें नही खरीद सकते। राजा ने मेरे खिलाफ ऐसी शत्रुता फैला रखी है। हमने उन पर एक बार हमला नहीं किया। लेकिन हम अपने सम्मान की

रक्षा जरूर करेंगे"।

दूत ने गुरु से बहुत अनुनय विनय करके कहा कि वे पिछली बातो को भुला दे और राजा की भूमि को अपनी ही भूमि समझे। गुरु ने कहा, "मेरे घर मे जो भी विनम्रता से और दोस्ती का हाथ बढ़ाकर आता है, उसका सदा हृदय से स्वागत होता है। जो क्षमा चाहते है उनके खिलाफ हम कोई शिकायत नही रखते"।

इनसे बातचीत का ब्यौरा सुनकर भीमचद भी बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत से उपहार लेकर वह गुरु से मिलने गया। गुरु ने भी उसका बहुत आदर किया। ऐसा जान पड़ा कि अब दोनो एक दूसरे के मन की बात को अच्छी तरह समझ गये है।

इन्ही दिनों सम्राट औरगजेब ने जम्मू के शासक मिया खा को पहाड़ी सरदारो से नजराना वसूल करने की आज्ञा दी। मियां खा ने बादशाह की आज्ञानुसार अपने सेनापति अलीफ खा को नजराने की वसूली के लिए भेजा। पहाड़ी राजाओ ने कहा कि भीमचंद उनमे सब से बडा है, इस कारण पहले उसी से कर मागा जाय। यदि उसने दे दिया तो सब उसका अनुसरण करेंगे। मुगल सेनापति ने दूत भेजकर भीमचद को कहलवा भेजा कि या तो नजराना दे और या युद्ध के लिए तैयार हो जाये। भीमचद ने उत्तर दिया कि वे कर देने के बजाय लडना पसद करेंगे। अपने सलाहकारो की राय से भीमचंद ने गुरु से सहायता मागी। गुरु ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपनी सेना को युद्ध के लिए सावधान भी कर दिया। इस बीच अलीफ खा ने कुछ पहाड़ी सरदारो से, जो उसके मित्र बन गये थे, नजराना वसूल कर लिया था। वे मुगलो के साथ मिलकर, गुरु और भीमचद आदि के खिलाफ लड़ने को भी तैयार हो गये थे।

एकमत से गुरु को सयुक्त सेनाओ का सेनापति बनाया गया। शत्रु को किले से बाहर निकलकर खुले मैदान मे लडने पर मजबूर किया गया। उन्होंने इतनी दिलेरी दिखायी कि राजा भीमचद भागना चाहता था। तब गुरु ने स्वय मोर्चा सभाला और उनकी गोली ने बीझरवाल के राजा दयाल की छाती को आरपार छेद दिया। उन्होंने तीरों की वर्षा से दुश्मनों मे खलबली मचा दी। सिख लोग इतनी वीरता से लडे कि दुश्मन मैदान मे टिक नही सके और अधेरे मे छुपकर भाग खडे हुए।

गुरु आनन्दपुर लौट गये। रास्ते में उन्हे फिर गांव वालों के विरोध और असहयोग का सामना करना पडा, जिन्होंने उनकी सेना को अनाज और घोडो के लिए दाना बेचने से इकार कर दिया। सैनिको ने बलपूर्वक अपनी जरूरत की चीजे ले ली और उनका मूल्य चुका दिया। उनकी इस हरकत से पहाड़ी सरदारो के मन मे फिर भय उत्पन्न हुआ।

आनन्दपुर पहुचकर गुरु ने कुछ दिन शाति मे बिताये। उनकी सेना की शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि पजाब का शासक दिलावर खा भी डर गया।[1] उसने अपने बेटे के

---

1. 'अखबाराते दरबारे मोहल्ला' (जिल्द 1) से जान पड़ता है कि औरगजेब भी आतंकित हो गया था। नवबर 1693 में सरहिंद से सूचना मिली कि गुरु गोविन्द सिंह ने गुरु होने का ऐलान कर दिया। फौजदारी को आदेश दे दिया गया कि वे गुरु को अपनी शक्ति सगठित करने से रोकें।

नेतृत्व मे ग्यारह हजार सैनिको को गुरु से कर वसूल करने के लिए भेजा । उनको आदेश दिया कि कर बलपूर्वक वसूल किया जाये, और यदि इस पर भी वसूल न हुआ तो गुरु को आनन्दपुर से निकाल दिया जाये । उनके बाद हर एक पहाड़ी सरदार को वैसा ही आदेश जारी करने को कहा गया । तूफान के आसार देखकर बहुत से लोग आनन्दपुर छोड़कर भाग गये । गुरु की सेना ने सतलुज के किनारे मुगल सेना का मुकाबला किया, और उसे बुरी तरह हराया । उसके बाद दिलावर खा ने एक सेना भेजी । इस बार उसका सेनापति था हुसैन नाम का एक गुलाम । असख्य सैनिको को लेकर वह आनन्दपुर की ओर बढ़ा । हुसैन ने गावो को इस तरह लूटा और तहसनहस किया कि भीमचद डर गया । उसने सोचा कि गुरु का साथ छोडकर हुसैन का मित्र बनने मे ही कल्याण है । उससे जो भी नजराना मागा गया उसने चुपचाप दे दिया । उसकी देखा देखी दूसरे सरदारो ने भी नजराना चुका दिया । यही नही, वे सब हुसैन के साथ मिल गये, और मुगल सेना के साथ अपनी सेनाएं भी आनन्दपुर की ओर बढ़ा दी ।

आनन्दपुर जाते हुए मुगल सेनापति गूलर के शासक गोपाल के साथ फैसला कर लेना चाहता था । उसने दूसरे राजाओ की तरह नजराना नही दिया था, क्योकि उससे जिस रकम की माग की गयी थी वह उसकी सामर्थ्य के बाहर थी ।

गोपाल ने सहायता के लिए अपना दूत गुरु के पास भेजा । पहले तो गुरु ने दूसरे सरदारो के साथ उसकी सुलह कराने की कोशिश की, ताकि वे मिलकर मुगलो के इस अत्याचार का जवाब दे सके । लेकिन इसमे सफलता नही मिली और गोपाल के पास मुगलो और कागड़ा तथा बिलासपुर के राजाओ की सयुक्त सेनाओ से मोर्चा लेने के अलावा दूसरा रास्ता नही रह गया । गुरु ने उनकी सहायता के लिए कुछ सेना भेजी, जिसमे से सात सैनिक लड़ाई के मैदान मे मार डाले गये । भीमचद अपनी सेना के साथ भाग खड़ा हुआ और गोपाल विजयी हुआ । बहुत से कीमती भेट उपहार लेकर वह गुरु के दर्शन के लिए पहुचा ।

गुरु ने इतनी कम उम्र मे ही दो विवाह कर लिए थे । क्योकि दोनो कन्याओ के माता पिता का दावा था कि उन्होने अपनी कन्या का गुरु और उन्ही के घराने के लिए पालन पोषण किया था । उनमे से एक के, जिसका नाम सुदरी था, अजितसिह (1686) नाम का एक पुत्र हुआ । दूसरी का नाम था जीतोजी । उसके तीन बेटे हुए—जूझरसिह (1690), फतेहसिह (1699), जोरावरसिह (1696) । बाद मे, जीतोजी के देहात के बाद, एक सिख ने फरियाद की कि उसने भी प्रण किया था कि उसकी बेटी साहब कौर गुरु के अतिरिक्त किसी को वरण नही करेगी । बहुत संकोच के बाद गुरु ने उसकी विनती स्वीकार कर ली । साहब कौर ने निसतान रहना स्वीकार कर लिया और बाद मे उन्हें खालसा की माता कहलाने का सम्मान प्राप्त हुआ ।

एक दिन काशी से केशवदास नाम के एक महापंडित गुरु से मिलने आये । उन्होने

दावा किया कि अगर उन्हे होम की सारी सुविधा मिल जाये तो वह चडी के दर्शन करा सकते है। उन्होंने कहा कि बडी साधना और कठिन तपस्या के बाद देवी प्रकट होगी, और केवल उनके समान व्यक्ति ही वह अनुष्ठान करा सकेगा। उन्होंने गुरु के चेलो को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि जो भी चडी का आह्वान कर सकेगा, उसको देवी का वरदान मिलेगा। चडी का यह वरद् पुत्र कभी किसी लड़ाई मे हराया नही जा सकेगा। उन्होंने यह भी कहा कि प्राचीन काल मे चडी के अनन्य भक्त होने के कारण ही भीम और अर्जुन को युद्ध मे सदा सफलता मिली थी।

सिखो पर उस ब्राह्मण की बातो का बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसका अनुरोध गुरु तक पहुचाया। गुरु ने कहा – "देवी देवता भी उस परमेश्वर की इच्छा के अधीन है जो सब से बड़ा है, सब के ऊपर है। हमे उस परमेश्वर से वरदान मागना चाहिए। अगर मनुष्य अपने को उसको समर्पित कर दे, और केवल उसके आदेश को पूरा करने के लिए लडे, तो वह मनुष्य को अपना भाग्य विधाता बनने की शक्ति देता है"।[1]

तलवार को म्यान से बाहर खीचकर गुरु ने कहा, "यह चमकता हुआ लोहा ही शक्ति का सच्चा रूप है – यह धर्म की रक्षा करता है और अधर्म का विनाश। जो सत्कार्य के लिए, धर्म के लिए इसकी दीक्षा लेगा वह अवश्य ईश्वर का कृपापात्र होगा"। उन्होने कुछ पद पढ़कर यह समझाने की कोशिश की कि शक्ति वास्तव मे जनता मे है। अपने अनुयायियो को लक्ष्य करके उन्होंने कहा,

युद्ध जिते इनही के प्रसाद, इनही के प्रसाद सो दान करे।
घट ओघ टरे इनही के प्रसाद, इनहीं के कृपा पुनधाम भरे।
इनही को प्रसाद सों विद्या लई, इनही की कृपा सब शत्रु मरे।
इनही की कृपा के सजे हम है, नहिं तो मो से गरीब करोर परे।

1.डाक्टर गोकुलचद नारग लिखते हैं – गुरु सत्य, अनादि और अनत परमेश्वर के सिवा और किसी देवी देवता में विश्वास नही करते थे। इसमें कोई सदेह नही है कि या तो अपने अनुयायियों को यह दिखाने के लिए कि ऐसी कोई शक्ति नही है और या देवी के वरद् पुत्र के रूप में जनता का समर्थन और विश्वास पाने के लिए (जिस पर सब इतिहासकार सहमत है) गुरु ने देवी के आगे बहुत बड़े बलिदान का आयोजन करने का आदेश दिया। प्रत्यक्ष उद्देश्य तो यही था कि देवी प्रसन्न होकर दर्शन दे। कहते हैं कि यह उत्सव पूरे वर्ष चला। दुर्गा अष्टमी पर गुरु ने पुजारी से पूछा कि देवी कब दर्शन देंगी। पुजारी ने कहा कि "देवी तो तभी प्रसन्न होगी जब उच्चवश का कोई धर्मात्मा और पवित्र व्यक्ति अपनी बलि चढ़ाये"। गुरु ने प्रसन्न मुद्रा से, व्यग्य से मुस्करा कर कहा, "महाराज, आपसे बढ़कर योग्य व्यक्ति कहां मिलेगा, जिसका सिर देवी को भेंट के अधिक योग्य होगा"? पडित को काठ मार गया और वह कोई बहाना बनाकर भाग निकला। गुरु ने होम की सारी सामग्री आग में झोंक दी और तलवार खीचकर पर्दे के बाहर निकल आये। होम की ढेरों सामग्री पाकर आग की लपटें इतनी ऊची उठी कि पहाड़ी की ऊंचाई पर होने के कारण, मीलों दूर तक देखी जा सकती थी। अग्नि की उन प्रचड लपटों को ही देवी का रूप माना गया।

4

वाहो वाहो गोविन्द सिह आपे गुरु चेला ।

– भाई गुरुदाससिह

1669 मे वैशाख के प्रथम दिन, हिदुओ के नववर्ष के प्रारभ के अवसर पर, गुरु गोविन्द सिह ने बहुत सोच विचार के बाद एक नयी व्यवस्था स्थापित करने का सकल्प किया । अब तक इस पथ मे ऐसे हरेक हिदू या मुसलमान का स्वागत था, जो जाति पांति का भेदभाव त्याग कर पद या धर्म की चिता किये बिना, मानवमात्र की सेवा करने को तत्पर था, और पाखड से दूर अपने विचारो और कर्म से पवित्र था । यह शातिप्रिय और धर्मनिष्ठ लोगो का समाज था ।

पाचवे गुरु अर्जुन को बादशाह जहागीर की आज्ञा से मृत्युदड दिया गया था परतु उन्होने बिना सघर्ष किये, प्रभु की वेदी पर अपने प्राणो की आहुति दे दी थी । उनके पुत्र, छठे गुरु हरगोविन्द ने एक सेना सगठित की, और अपनी सुरक्षा के लिए कई बार शाहजहा की फौजो से टक्कर ली और उन पर विजय पायी । उनके उत्तराधिकारी गुरु हरिराय ने भी दो हजार दो सौ घुड़सवार सैनिको की एक टुकड़ी अपने पास रखी थी, किंतु उसका इस्तेमाल कभी नही किया । आठवे गुरु हरकिशन की आठ वर्ष की उम्र मे ही मृत्यु हो गयी थी । नवे गुरु को, जो गुरु गोविन्द सिह के पिता थे, औरगजेब ने दिल्ली मे कत्ल करवा दिया था । परंतु उसके लिए न कोई युद्ध हुआ, और न उसके विरोध में किसी ने अपना सिर ही उठाया ।

गुरु गोविन्द सिह के साथ पहाड़ी राज्यो के शासको ने जो व्यवहार किया था उसकी चुभन का अनुभव हो चुका था । हिदू होकर भी औरंगजेब से साठ गांठ करके इन राजाओ ने गुरु पर केवल इसलिए आक्रमण किया कि वे सभी दर्जो के लोगो मे सहअस्तित्व की भावना जगाना चाहते थे, और चाहते थे कि उन्हे अपना मार्ग स्वय चुनने की आजादी हो । उनके मन मे न तो राज्य विस्तार की भावना थी और न किसी को हानि पहुंचाने का इरादा । लेकिन तो भी उनके अनुयायियो के लिए शातिपूर्वक जीना दूभर हो गया ।

इन्ही कारणों से गुरु ने एक नयी व्यवस्था स्थापित करने का निश्चय किया जिसका एकमात्र आदर्श था धर्म के लिए बलिदान । उन्होने संकल्प किया कि वे राजनीतिक,

सामाजिक या आर्थिक, किसी प्रकार की गुलामी को स्वीकार नही करेगे। इस आदर्श के लिए वे शस्त्रो का इस्तेमाल करने से भी नही हिचकेगे। यही नहीं, उनका विश्वास था कि शस्त्र उस आदर्श समाज की स्थापना मे बहुत काम आयेगे जिस समाज मे कोई किसी का हक नही छीनेगा, और प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का मार्ग चुनने की स्वतत्रता होगी, यदि वह दूसरो के रास्ते मे बाधक न बने।

डाक्टर गोकुलचद नारंग ने ठीक ही लिखा है, "हिदू स्वभाव से बहुत कोमल थे, आत्म सतुष्ट थे, और उनकी आकांक्षाए बहुत साधारण थी। शारीरिक परिश्रम से उन्हे अरुचि थी, वे भीरु थे और उनका नैतिक पतन हो चुका था, यद्यपि धर्म से उनका लगाव था। उनमे धर्म तो था लेकिन राष्ट्रीयता की भावना नही थी। गुरु गोविन्द सिह ने राष्ट्रीयता को उनका धर्म बनाने की कोशिश की"।

कई घटनाओ की गहरी छाप गुरु के मन पर पड़ी थी और उन्होने ही शायद उनके निर्णय को प्रभावित भी किया। दिल्ली के बीच चौक मे उनके पिता का सिर उतरवा लिया गया, लेकिन उनके मृत शरीर को उठाने के लिए कोई भी आगे नही बढ़ा। आये तो केवल दो नीच जाति के व्यक्ति, वह भी वेश बदलकर और अधेरे के पर्दे मे छुपकर।

हिदू राजा एक दूसरे से तो लड़ते ही थे, अपने बधुओ और सहधर्मियो के खिलाफ मुगल बादशाह से सहायता की याचना करते थे, जैसे कि पहाड़ी राजाओ ने गुरु गोविन्द सिह के साथ किया। जाति पाति ने हिंदुओ मे इतना भेदभाव पैदा कर दिया था कि गुरु ने अपने दो सिख शिष्यो को सस्कृत पढ़ने बनारस भेजा तो पडितों ने उन्हे पढ़ाने से इकार कर दिया क्योकि वे नीच जाति के थे। कन्याओ को जन्मते ही मार डाला जाता था। स्त्रियो की दशा बहुत ही गिरी हुई थी। उनके साथ इतना बुरा व्यवहार होता था कि उन्हे सब मानव अधिकारो से वंचित कर दिया गया था।

यद्यपि बहुत से सिख गुरु के उपदेशो को मानते थे, और उन्हें हर प्रकार से अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे, लेकिन वे अपने सामाजिक और पारिवारिक जीवन मे इतने उलझे हुए थे कि धर्म के लिए महान बलिदान करने के लिए जल्दी तैयार नही होते थे। उनकी आध्यात्मिक और धार्मिक शक्ति को तो माना जाता था लेकिन राजनैतिक दृष्टि से वे प्रभावशाली नही थे। गुरु उन्हे ऐसी ही शक्ति मे बदलना चाहते थे, और यदि भविष्य मे उन्हे एक ऐसा राष्ट्र बनाना था, जिसमे हर एक व्यक्ति आजाद ही नहीं समान भी हो, तो उस काम को करने का यही समय था।

लेकिन क्या लोग इस अग्नि परीक्षा के लिए तैयार थे ? गुरु को यही परखना था। वैशाखी के दिन आनन्दपुर मे हजारो स्त्री पुरुष, गुरु के दर्शन के लिए इकट्ठे हुए तो गुरु उस विशाल जन समूह के सामने नगी तलवार खींचकर खड़े हो गये और गरज कर बोले, "मुझको ऐसे सिख की जरूरत है जो अभी, इसी क्षण अपनी गर्दन मुझको भेंट कर

सके। मेरी तलवार ऐसे सिख के खून की प्यासी है जिसने मेरे आगे बलिदान करना सीखा हो"।

सभा मे सन्नाटा छा गया। गुरु का उद्देश्य क्या था? इसके पहले कभी किसी गुरु ने अपने भक्त का सिर नही मांगा था। किस लिए उनकी माग की जा रही है? कोई नही समझा कि भक्तो से सदा स्नेह करने वाले गुरु पर अचानक यह धुन क्यो सवार हो गयी? शोलो की सी चमकती हुई आंखो से चारो ओर देखकर गुरु ने फिर कहा, "क्या इस भीड़ में कोई नही है जो यह कहे कि मै आपको अपना सिर देता हू, जिसने भगवान को अपना सिर हथेली पर रखकर समर्पित कर दिया है"?

अब भी मौत सा सन्नाटा छाया हुआ था। जब गुरु ने तीसरी बार पूछा, "क्या किसी को मेरे ऊपर इतना विश्वास नही है"? तो लाहौर का दयाराम बढ़ा। उसने कहा, "हे राजाओं के राजा, मैं अपना सिर आपकी नजर करता हूं। यह आपका ही है, और अगर आपके किसी काम आया तो मै अपने को धन्य समझूगा"।

गुरु गोविन्द सिंह उसे एक खेमे के अदर ले गये, और एक बकरे को मार करके खून से सनी तलवार लिये बाहर निकले। उनकी आखे पहले से भी ज्यादा लाल थी, और उनमे से चिनगारिया निकल रही थी।

भीड़ मे से बहुत से लोग डर कर भाग खड़े हुए। बाकी लोगो ने यह समझा कि शायद गुरु का सिर फिर गया है। गुरु ने फिर उनको ललकारा, "मुझे एक सिर और चाहिए। अब धर्म की रक्षा वही कर सकते है जो अपने प्राणो का बलिदान करने को तैयार हो"। इस बार दिल्ली के धरमदास ने उत्तर दिया। गुरु उसको भी अंदर ले गये, और एक और बकरे को मार कर खून मे टपकती हुई तलवार लेकर भयभीत जनसमूह के सामने खड़े हो गये। कई लोग गुरु की मा के पास दौड़े गये, और उनसे कहा कि या तो गुरु को इस अत्याचार से रोके और या उनको नानक की गद्दी से उतार दे; क्योंकि वे अपनी सनक पूरी करने के लिए बेगुनाहो का खून बहा रहे है। मा ने गुरु से कहला भेजा कि वे ऐसा न करे, पर उन्होने उनकी नही सुनी।

इस बार, और अगली बार दो, तीन और व्यक्ति आगे बढे—द्वारका का मोखम चद, बीदर का साहब चद और जगन्नाथपुरी का हिम्मत। तीनो ने बारी बारी अपना सिर भेट किया। इसके बाद गुरु ने अपनी माग बद की। उन पाचो को, जो अपने सिर कटाने को तैयार हो गये थे, नये वस्त्र, नीली पगड़ी, लबे, ढीले पीले कुर्ते, कमरबंद और कच्छे पहनाकर बाहर लाया गया। उनकी कमर से तलवार लटक रही थी और वे सैनिको जैसे लग रहे थे। गुरु ने उनको अपने "पांच प्यारे" कहा। सारी सभा सतश्री अकाल के नारो से दिशाओ को गुजाने लगी। दिलचस्प बात तो यह है कि पाचो प्यारे जाति के अछूत थे।

अब गुरु ने पानी से भरा एक लोहे का कटोरा मगवाया। उन्होने पाचो प्यारो को

अपने साथ कटोरे के चारो ओर बैठकर बारी बारी से दुधारी कटार से पानी को हिलाते हुए अपने या पूर्व गुरुओ के रचे हुए पद पढ़ने को कहा ।[1] यह काम चालू ही था कि गुरु की पत्नी जीतो बताशे लेकर वहा आ पहुची । गुरु ने उनसे बताशो को पानी में घोल देने को कहा । उन्होने कहा, "हा बहुत अच्छा सयोग है — खालसा सिर्फ योद्धा ही नही होगे, वे जिसकी सेवा करेगे उसके जीवन मे मिठास भी भरेगे" । पाठ खत्म हुआ तो गुरु ने कटोरे के उस 'अमृत' को पांचो प्यारो को बाटा । उनकी आखो, बालो पर उसको छिड़का और फिर उसी कटोरे से बारी बारी पाचो ने 'अमृत' का पान किया । इसके बाद वे स्वय उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये, और उनसे अपने ऊपर 'अमृत' छिड़कने और प्रसाद देने को कहा ।

सब स्तब्ध रह गये । उन्होने कहा, "आप हमारे गुरु है । इहलोक और परलोक मे हमारे रक्षक है, जिसके चरणो मे हमने अपना जीवन तक अर्पित कर दिया है । हम कैसे आपको 'अमृत' दे सकते है " ? गुरु ने उत्तर दिया, "आज से मैंने नयी व्यवस्था शुरु की है । न कोई बड़ा होगा और न कोई छोटा । मैं आपका शिष्य बनकर, समानता के आधार पर यह नयी बिरादरी स्थापित करना चाहता हू" । गुरु ने अपना आदेश वापस लेने से इकार कर दिया तो उनको भी उसी प्रकार अमृत से अभिषिक्त किया गया । उनके भक्तों को बडा आश्चर्य हुआ । सारे वातावरण मे मानो बिजली दौड़ गयी हो । एक नयी जान पड़ गयी । कहते हैं कई हजार व्यक्तियो ने उस दिन दीक्षा ली । दो सप्ताह मे उनकी सख्या अस्सी हजार हो गयी ।[2] गुरु ने उन्हे खालसा यानी पवित्र कहकर उनका सम्मान किया ।

इसके बाद गुरु ने भाषण देते हुए कहा, "अब से आपकी कोई जाति नही है । आप हिदू या मुसलमान किसी धार्मिक उपचारो या अनुष्ठानो का पालन नही करेंगे । किसी प्रकार के अधविश्वास नही रखेगे । एक ही परमात्मा मे विश्वास रखेंगे जो सब का रचयिता और रक्षक है, जो सृष्टिकर्ता और सहारक है । इस नयी व्यवस्था मे ऊच नीच सब बराबर होंगे, सब एक दूसरे के भाई होगे । अब से आपके लिए तीर्थयात्रा बद है । किसी प्रकार के कठोर जीवन की आवश्यकता नही, पवित्र गृहस्थ जीवन ही आपका जीवन होगा । पर धर्म के नाम पर आपको उसका त्याग करने के लिए सदैव तत्पर रहना

---

1 पाच सग्रह है — गुरु नानक का जपजी, गुरु गोविन्द सिह का जाप साहब, देश सवैये तथा चौपड़ विनती और गुरु अमरदास का आनन्द ।

2 भगत लक्ष्मणसिह ने अपनी पुस्तक "गुरु गोविन्द सिंह का जीवन तथा कार्य" (लाहौर, 1909) में लिखा है, 'अमृत पान कराने का पवित्र सस्कार पहले लोगों के विशेष अनुरोध पर ही होता है, सब सिखों के लिए नही । लेकिन अब सिख धर्म ग्रहण करने वाले सभी को कराया जाता है, धर्म से सच्चा विश्वास हो या न हो । परिणामस्वरूप अक्सर लोग धर्म को हृदय से अगीकार किये बिना धर्म परिवर्तन कर लेते हैं' ।

होगा । स्त्रिया सब प्रकार से पुरुषो के समान होगी । जो अपनी कन्या की हत्या करेगा खालसा उससे कोई संबध नही रखेगे । गुरु के समक्ष समर्पण की शपथ के चिह्न के रूप मे आप क्षत्रियों की तरह केश बढ़ायेंगे ।[1] उनको साफ सुथरा रखने के लिए कघा रखेंगे, ईश्वर की सार्वभौमिकता के प्रतीक स्वरूप लोहे का कड़ा पहनेगे, पवित्रता के चिह्न स्वरूप कच्छा धारण करेंगे और आत्मरक्षा के लिए कृपाण रखेगे । धूम्रपान आपके लिए निषिद्ध होगा क्योंकि वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । आप शस्त्रो से प्रेम करेंगे । घुड़सवारी, तीरदाजी और निशानेबाजी आदि मे कुशलता प्राप्त करेगे । शारीरिक पराक्रम आपके लिए उतना ही आवश्यक होगा जितनी आतरिक चेतना और आध्यात्मिक शक्ति । आप हिंदुओ और मुसलमानो को जोड़ने वाली कड़ी बनेगे ।[2] गरीबो की उनकी जाति की परवाह किये बिना, सेवा करेगे । मेरे खालसा हमेशा गरीबो की रक्षा करेंगे, और हमारे पंथ मे देग और तेग दोनो का बराबर महत्व होगा । अब से आप सब अपने को सिह कहेगे और 'वाहे गुरुजी का खालसा, वाहे गुरुजी की फतेह' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करेगे" ।[3]

जब यह खबर फैली कि गुरु न 'करो या मरो' के सिद्धांत पर एक नयी व्यवस्था स्थापित की है तो हिंदुओ मे तो नया उत्साह भर गया, लेकिन उनके शत्रु आतंकित हो उठे ।

---

1 क्षत्रिय धर्म न मुडन (महाभारत शातिपर्व)

2 भाई दयालसिह, जो पाच प्यारों में से थे, की पुस्तक रहितनामा देखिये ।

3 भाई चोपासिह की रहितनामा में शब्द इस प्रकार है – "गुरु के सिख को चाहिए कि वह गरीब के मुह को गुरु का खजाना समझे" । गुरु चोपासिह ने गुरु गोविन्द सिह को बचपन मे पाला था ।

5

भय काहू को देत नहि, नहि भय मानत आन ।
कहु नानक इस जगत् मे, ज्ञानी ताहि बखान ।

–गुरु तेगबहादुर

एक मुसलमान इतिहासकार गुलाम मोहीउद्दीन के अनुसार, खालसा के जन्मदिन पर गुरु द्वारा भक्तो के सामने दिये गये भाषण की सूचना सवाददाता ने बादशाह को दे दी। उसने कहा, "गुरु ने हिदुओ की जाति, पुराने रीति-रिवाज, विश्वास, अधविश्वास आदि को मिटा दिया है और उनकी एक ऐसी बिरादरी बना दी है जिसमे कोई ऊच नीच नही रहेगा। सभी जाति के लोग एक साथ बैठकर एक ही थाली मे खायेगे"। रूढ़िवादियो के विरोध करने पर भी, लगभग बीस हजार स्त्री पुरुषो ने पहले ही दिन हाथ मे खड्ग लेकर दीक्षा ग्रहण की। गुरु ने सभा मे कहा, "मै अपने को गोविन्द सिह तभी कहूंगा जब कमजोर कबूतर को बाज पर झपट कर उसके टुकड़े टुकड़े करने योग्य बना दूगा, जब मेरा एक सिपाही दुश्मनो के सवा लाख के बराबर होगा"।

पहाड़ी सरदार भी डर गये। एक दिन गुरु दूनघाटी मे शिकार खेलने गये तो उनमे से दो सरदारो, बलियाचद और अलीमचद ने, फौज लेकर उन्हे ललकारा। सिखो की सख्या थोड़ी थी, फिर भी उन्होने कमाल कर दिखाया। गुरु के वीरो ने दुश्मनो मे प्रलय मचा दिया। बलियाचद मारा गया। अलीमचद का एक हाथ कट गया और वह लड़ाई के मैदान से भाग खड़ा हुआ। उसके भागते ही पहाड़ी सेना भी तितर बितर हो गयी। दूसरे पहाड़ी सरदारो ने इस लडाई की खबर सुनी तो वे डर गये। जब उन्होने देखा कि उनकी शक्ति इतनी नही है कि वे गुरु के खिलाफ ठहर सके तो उन्होने दिल्ली के बादशाह से दरख्वास्त करने का निश्चय किया। उस समय बादशाह दक्षिण मे युद्ध पर गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति मे सरहिद के सूबेदार ने उनकी दरख्वास्त सुनी जिसमे कहा गया था, "वर्तमान गुरु, उस नानक की गद्दी के दसवे उत्तराधिकारी है जिसने शाति और बधुत्व की सीख दी थी। इस कारण इस गुरु के हमारे बीच मे रहने पर हमे कोई आपत्ति नही हुई थी। लेकिन इसके विचार नानक से भिन्न हैं। जब हमने उसकी बढ़ती हुई ताकत को दबाने की कोशिश की जिसके बल पर वे हमको ही नही दिल्ली के बादशाह को भी ललकारना चाहते है, तो वे नाहन भाग गये। वहा उन्होने राजा से

दोस्ती की और फिर श्रीनगर के राजा फतेहशाह से उनका विरोध हुआ । हमारे और उनके बीच भंगानी मे युद्ध हुआ जिसमे खून पानी की तरह बहाया गया । तब वे आनन्दपुर लौट गये और खालसा के नाम से एक नयी व्यवस्था कायम की । यह व्यवस्था हमारे सारे विश्वासो और परपरा के खिलाफ है । वे कहते है कि उनका धर्म हिंदू और इस्लाम दोनो से अलग है फिर भी वे चाहते है कि हम उनके साथ मिलकर बादशाह के खिलाफ लड़े, जिसके विरुद्ध उनको गहरी शिकायत है । हमने ऐसा करने से इकार कर दिया, और इस कारण वे हमसे क्रुद्ध है । अब वे मुगल साम्राज्य को चुनौती देने के लिए सारे देश से आदमी और अस्त्र शस्त्र इकट्ठा कर रहे है । हम उन्हे रोक नही सकते, लेकिन सम्राट की वफादार प्रजा की हैसियत से, हम आप से दरख्वास्त करते है कि गुरु को आनन्दपुर से निकालने मे हमारी मदद करे और इस काम मे अधिक देर न करे । अगर ऐसा नही किया गया तो वे सारे साम्राज्य के लिए एक भारी मुसीबत बन जायेगे । उनका इरादा दिल्ली पर धावा बोलने का है" । दरख्वास्त को सरहिंद के सूबेदार ने बादशाह तक पहुचा दिया ।

कुछ दिनो बाद बादशाह ने उत्तर दिया कि अगर पहाड़ी राजा शाही फौजो का खर्च उठाना स्वीकार करे तो उनकी सहायता की जायेगी । पहाड़ी राजा सहर्ष राजी हो गये । दो मुगल सेनापति पेंदे खा और दीन बेग दस-दस हजार सिपाहियो के साथ राजपूत राजाओ की मदद के लिए रवाना कर दिये गये । आगे रूपार में पहाडी फौजे भी उनके साथ मिल गयी जिनका नेतृत्व स्वय उनके राजा कर रहे थे । जैसा कि घोषित किया गया था, इस आक्रमण का उद्देश्य गुरु को आनन्दपुर से निकालना, लेकिन साथ ही यह भी कहा गया कि यदि उनको स्वामिभक्त प्रजा की तरह रहना मान्य हो तो उन्हे, कर लेकर, वहा रहने की अनुमति दे दी जाएगी ।

जब गुरु को समाचार मिला कि एक भारी सेना उनकी ओर बढ़ रही है तो उन्होने भी अपनी सेनाओ को सतर्क किया और युद्ध की तैयारिया करने लगे । पांचो प्यारो को उन्होने अपनी पाच सेनाओ का सभापति नियुक्त किया और स्वय अपने सैनिको के साथ लड़ने का निर्णय किया । उनकी तोपो ने शत्रुओ को भारी क्षति पहुंचायी । एक ओर से राजपूत सेना वार कर रही थी और दूसरी तरफ से मुगल सेना । इस युद्ध को धर्म युद्ध बता कर मुगल और राजपूत सैनिको को भड़काया गया था, लेकिन इससे बात नही बनी । अत मे पेंदे खां ने गुरु को द्वंद्व युद्ध मे फंसाकर युद्ध का आखिरी फैसला कर डालने का निश्चय किया । उसने गुरु को सामने आकर मुकाबला करने की चुनौती दी । उसकी ललकार सुनकर गुरु अपना घोड़ा कुदाते हुए सामने आये और गरजकर बोले, "मै, गोविन्द सिह, तुम्हारे साथ आखिरी फैसला करने आया हूं" । पेंदे खा ने व्यग्य से कहा, "तो करते क्यो नही फैसला ? पहला वार तुम्ही करो ताकि तुम्हे कोई पछतावा न

रह जाये" । गुरु ने मुस्करा कर कहा, "पहला वार करना हमारी नीति नही है । तुमने हमारे ऊपर आक्रमण किया है । मै तुमको ही यह मौका देता हू" ।

गुरु पर तलवार का अचूक वार करने के इरादे से पेंदे खा ने गुरु के चारो ओर घोडे को घुमा-घुमाकर कई पैंतरे बदले, लेकिन गुरु इतनी फुर्ती से अपने घोड़े को घुमा देते थे कि पेंदे खा की कोई चाल काम न आयी । फिर उसने तीर छोडा जो सनसनाता हुआ गुरु के कान के पास से निकल गया । गुरु ने ताने से कहा, "वाह ! क्या अचूक निशाना है" । पेंदे खां का दूसरा तीर भी खाली गया । अब वह पीछे हटने लगा तो गुरु ने ललकारा, "कायर ! मुझको मौका क्यो नही देता" ? यह कहते हुए गुरु ने पेंदे खा के कान को निशाना बनाया, जिसका कुछ भाग जिरह बख्तर के बाहर था । निशाना ऐसा अचूक था कि पेंदे खा तुरंत घोडे से गिरकर मर गया । अब दूसरे सेनापति दीन बेग ने मोर्चा सभाला ।

युद्ध मे सिखो का पलडा भारी हो रहा था । यह देखकर मुगल सेना तो जान की बाजी लगाकर लड़ने लगी, लेकिन पहाडी सेना मे भगदड़ मच गयी । दीन बेग बुरी तरह घायल हो गया और विजय की कोई आशा न देख, भाग खडा हुआ । ऊपर तक सिख सेनाओ ने उसको खदेडा, लेकिन गुरु ने और अधिक सताने को मना कर दिया । युद्ध क्षेत्र मे बहुत सा माल सिखो के हाथ लगा । दुश्मनो को बुरी तरह पीट देने के कारण वे उत्साह मे थे ।

गुरु ने अपने सिखो को कहला भेजा कि जो भी उनसे मिलने आये वह साथ मे शस्त्र या घोड़ा ले आये । गुरु की विजय की खबर चारो ओर फैली तो बहुत से लोग खालसा पथ मे शामिल होने की इच्छा से आये । गुरु ने बंदूक, तलवार, तीर आदि बनाने के लिए हथियार बनाने वालो को रखा, और ढेरो बारूद और सीसा भी जमा किया ।

पहाडी राजा अब भी आतकित थे । उन्होने मदद के लिए एक बार फिर मुगल बादशाह के पास जाने और उसके लिए बहुमूल्य उपहार ले जाने का निश्चय किया, क्योकि उनको भरोसा नही था कि वे अकेले गुरु से लोहा ले सकेगे । उनमे से एक ने ऐसा न करने की सलाह दी । उसकी राय यह थी कि सभी पहाडी राजा आनन्दपुर को चारो ओर से घेर ले तथा उनके सैनिको को या तो भूख से तड़पा तड़पा कर खत्म कर दे या आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर दे । उनकी यह सलाह मान ली गयी । जम्मू, नूरपुर, मंडी, भूटान, कुल्लू, केन्थल, गुलेर, चम्बा तथा श्रीनगर आदि के राजाओ ने अपना सगठन बनाया । सब ने एकमत से बिलासपुर के राजा भीमचद के पुत्र राजा अजमेरचद को इस सयुक्त सेना का सेनानायक चुना । पहले तो राजा अजमेरचद ने एक दूत द्वारा गुरु को कहला भेजा कि या तो आनन्दपुर छोडकर चले जाये और या, जिस भूमि पर शहर बसा रखा है, उसके वार्षिक किराये के रूप मे मुआवजा दे । यदि उन्होने ऐसा नही

किया तो शहर की चारो ओर से नाकाबदी कर दी जायेगी । गुरु ने उसकी माग को घृणा से ठुकरा दिया, और कहला भेजा कि उनके पिता तेगबहादुर ने मूल्य चुका कर वह जमीन खरीदी थी, इसलिए किराया मागने का अधिकार किसी को नहीं है, और यदि पहाड़ी राजाओ की मंशा यह है कि गुरु को और उनके अनुयायियों को उस धरती से निकाल दे, जो कानून से उन्ही की है, तो आत्मरक्षा के लिए लड़ने के सिवा गुरु के सामने और कोई रास्ता नही है । गुरु ने यह भी कहला भेजा कि अगर पहाड़ी राजा उनको शांति से रहने दें और उनके खिलाफ मुगलो से, जिनके अत्याचार को वे खत्म करने की कोशिश कर रहे है, सांठ गाठ करे, तो वे भी उनको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुचाना चाहते । वे इस धर्म युद्ध में उनकी सहायता चाहते हैं ।

इस उत्तर को सुनकर पहाड़ी राजा क्रोध से तिलमिला उठे । वे जानते थे कि गुरु इज्जत देकर शांति नही खरीदेंगे, और आत्मसमर्पण करने के बजाय लड़ना पसंद करेंगे । उन्होने एक विशाल सेना एकत्रित की जिसमे हर एक पहाड़ी राजा की सेना शामिल थी । उस समय आनन्दपुर मे सिखों की संख्या बहुत नही थी । लेकिन शीघ्र ही, पंजाब के कोने कोने से, गुरु के भक्त वहां जा पहुचे । गुरु के किशोर पुत्र अजितसिंह को भी सौ सिपाहियों की एक टुकड़ी का नायक बनाया गया । आनन्दपुर, लौहगढ़ और फतेहगढ़ के दोनो किलो को दो सेनानायको के सुपुर्द किया गया जिसके अधीन एक एक हजार सैनिक थे । गुरु ने अपनी सेनाओं को आदेश दिया कि वे केवल अपनी रक्षा करे और, किसी भी हालत में नगर की सीमा के बाहर न जायें ।

सिख इतिहासकारों का कहना है कि पहाड़ी सेनाएं टिड्डी दलो की भांति बढ़ आयी । सैनिकों और शस्त्रों में कम होते हुए भी गुरु की सेनाएं इतनी दिलेरी और आत्मविश्वास से लड़ी कि दुश्मनो में खलबली मच गयी । रधारो तथा गुज्जरों की सेना तो लड़ाई के मैदान से भाग खड़ी हुई । ये दोनों अपने युद्ध कौशल के लिए प्रसिद्ध थी । पहले एक लड़ाई मे बुरी तरह मात खा जाने के कारण वे गुरु से बदला भी लेना चाहते थे । नूह और बीजापुर नगर खो देने के बाद से उन्होने अपने आपको फिर से संगठित करना शुरु किया था और अपने सरदार जगतुल्ला के नेतृत्व मे एक बहुत शक्तिशाली सेना तैयार कर ली थी । लेकिन सिखों की बहादुरी और रणकौशल के आगे वे टिक नहीं सके । जगतुल्ला को मार गिराया गया, और सिखों ने उसके शव को उठाने भी नहीं दिया । गुरु स्वयं एक टीले पर बैठकर शत्रुओ का संहार कर रहे थे ।

राजाओ ने तीन ओर से अंतिम आक्रमण करने का निश्चय किया, लेकिन उसका भी कोई परिणाम नही निकला । जगतुल्ला का मृत शरीर ठंडी धूल में पड़ा रहा लेकिन, सिखो ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर, शत्रुओं के जोरदार हमले के बावजूद, उसे उनके हाथ न लगने दिया । घोर रक्तपात के बाद शत्रु पीछे हट गये । मंडी के राजा जैसे

कुछ लोगो ने नानक के घराने से सुलह कर लेने की राय दी । उन्होने कहा कि इतनी आध्यात्मिक शक्ति वाले महापुरुष से सधि की याचना करने मे कोई मानहानि नही होगी । लेकिन कुछ राजाओं का विचार था कि इससे गुरु की हिम्मत और बढ जायेगी । उन्होने कहा कि वास्तव मे गुरु इतने शक्तिशाली नही है जितना लोग समझते है, और यदि हम लोगो ने हिम्मत न हारी तो शीघ्र ही हमारी विजय होगी । उन्होने एक बार और बाजी लगायी । इस बार उन्होने अपनी सारी शक्ति एक ही ओर केद्रित कर दी । गुरु के बेटे अजित ने असाधारण शौर्य का परिचय दिया । उसका घोड़ा घायल हो गया तो वह पैदल ही लडने लगा । उसकी इस वीरता ने सारे वातावरण मे बिजली सी भर दी । सिखो ने शत्रुओ की सेना को गाजर मूली की तरह काटना शुरू किया । अत मे राजाओ ने निर्णय किया कि लडना व्यर्थ है और दो महीने की घेराबदी के बाद वे पीछे हट गये । पर इसके पहले उन्होने किले की सुरक्षा व्यवस्था को तोड़ने की एक और कोशिश की । नशे मे मस्त एक हाथी को रक्षा की दीवार तोड़ने भेजा । दुनीचद नामक सिख, जो पजाब से पाच सौ सिपाहियो की टुकड़ी लेकर गुरु की सेवा के लिए आया था, यह देखकर चुपचाप वहा से खिसक गया । उसके भागने की खबर गुरु ने सुनी तो बोले, "अपने राष्ट्र को खतरे मे डालकर, मृत्यु से डरकर जो भागता है उसको मृत्यु कही किसी और रूप मे उसकी प्रतीक्षा करती हुई मिलती है" । कहते है कि जब दुनीचद अमृतसर पहुचा, और उसकी बिरादरी को उसके कुकर्म के बारे मे पता चला, तो समाज से उसका बहिष्कार कर दिया गया और कुछ ही दिनो बाद वह साप के काटने से मर गया ।

सूड को छोड़कर, हाथी के सारे शरीर पर लोहे का कवच था । उसके माथे पर एक भाला खोस दिया गया था । इसी भाले से उसको लौहगढ़ के फाटक पर हमला करना था । योजना यह थी पहाड़ी सेनाए हाथी के पीछे पीछे रहे, और फाटक के टूटते ही अदर घुसकर शत्रुओ का सहार कर दे । इस प्रकार उन्होने गढ़ पर कब्जा करने की योजना बनायी । गुरु ने अपने एक वीर सिपाही विचित्रसिह को बर्छे से हाथी का माथा छेद देने का कठिन काम सौपा । एक और सिख उदयसिह को इस आक्रमण के नायक राजा केसरीचद के सिर को टुकड़े टुकड़े कर डालने का आदेश दिया गया ।

भयकर वेग से बढ़ते हुए पागल हाथी के मस्तक को छेदने मे विचित्रसिह पहली बार मे ही सफल हो गया । क्रोध से हाथी और भी ज्यादा भयानक हो उठा । वह पीछे लौटा, और अपने ही कई सिपाहियो को उसने रौद डाला । उदयसिंह ने केसरीचंद को द्वंद्व के लिए ललकारा और उसके सिर के टुकड़े टुकड़े कर डाले । बहुत से सैनिको और युद्ध सामग्री को खोकर, आधी रात मे, पहाड़ी राजा अपनी बची खुची सेनाओ को लेकर भाग खड़े हुए । उनका सब से मुख्य योद्धा घमडचंद भी युद्ध क्षेत्र मे मारा गया ।

उन्होने सकल्प कर लिया था कि गुरु को चैन की नीद सोने नही देंगे । उन्होने फिर

मुगल शहशाह से मदद मागी । यह खबर पाकर गुरु ने इस बार आनन्दपुर से कुछ दूर, खुले मैदान मे, दुश्मनो से टक्कर लेने का निश्चय किया । जब दुश्मनों ने यह देखा कि गुरु स्वय ही खतरा मोल ले रहे है तो वे उन पर टूट पड़े । गुरु की फौजो ने, जो ऊंची जगहो पर डटी खड़ी थी, दुश्मनो को मार भगाया । इस पर शत्रुओ ने भारी पुरस्कार का लोभ देकर एक मुसलमान तोपची को गुरु की हत्या करने के लिए तैयार किया परतु इस बार भी उनका दाव बेकार गया, एक ही निशाने मे तोपची ने गुरु के एक सेवक को मार डाला, लेकिन गुरु ने तोपची और उसके भाई दोनो को मौत के घाट उतार दिया ।

इस बीच सरहिद के सूबेदार वजीर खा के नेतृत्व मे शाही सेना युद्धस्थल पर पहुच गयी । गुरु को सलाह दी गयी कि वे आनन्दपुर के किले के अदर चले जाये लेकिन उन्होंने अपने स्थान से हटने से इकार कर दिया, और पांच हजार की तीन टुकड़ियो को लेकर आगे बढ़े । अग्रिम मोर्चे का संचालन चार साथियो के साथ अजितसिह कर रहे थे और पीछे की सेना का स्वय गुरु । सतलुज के किनारे तक घमासान युद्ध हुआ । गुरु ने अपनी फौज के साथ सतलुज को पार किया, और उस ओर मोर्चा कायम कर दिया । शाही और पहाडी सेनाओ को इतनी भारी क्षति पहुच चुकी थी कि उन्होंने पीछे हटने का निश्चय किया और मुगल सूबेदार को बहुत से कीमती उपहार देकर, उसको पीछे हटने पर राजी कर लिया । यह सोच कर राजा प्रसन्न थे कि गुरु ने आनन्दपुर छोड़ दिया, पर उनकी प्रसन्नता ज्यादा देर तक नही टिक सकी, क्योकि गुरु जीत का डका बजाते हुए आनन्दपुर लौट आये । राजा अजमेरचद ने, जो गुरु का प्रमुख शत्रु था, गुरु से सुलह करनी चाही । उसने बड़े मैत्रीपूर्ण सदेश के साथ बहुमूल्य उपहार भी भेजे । गुरु ने वैसे ही मैत्रीपूर्ण शब्दो मे उसका उत्तर दिया । दूसरे पहाड़ी राजाओ ने भी अजमेरचद का अनुसरण किया, और युद्ध से क्षत विक्षत उस धरती पर कुछ समय के लिए शांति का राज्य रहा ।

धन्य जियो तहको जग मे,
मुख ते हरि, चित मे जुद्ध विचार ।

– गुरु गोविन्द सिह

शाति के उस अल्पकाल मे गुरु ने अपने सिखो को उनके जीवन के आध्यात्मिक और सामाजिक पक्ष का ज्ञान कराया । स्त्री-पुरुष उनके दर्शन के लिए दूर दूर से पैदल चलकर आते थे और गुरु के आदेश के अनुसार, उनको घोडे और शस्त्र भेट करते थे । सुबह शाम सत्सग होता था जिसमे गायको द्वारा गुरु वाणी का, गाकर, पाठ किया जाता था, परमात्मा को सर्वस्व अर्पित करने का उपदेश गुरु देते थे, और कहते थे कि हृदय मे ईश्वर का ध्यान सदा रखो और हरेक काम उसी की प्रसन्नता के लिए करो । गुरु अपने अनुयायियो से एक दूसरे की सहायता करने, और सारी मानव जाति को एक समझने का आदेश देते थे ।

एक दिन गुरु ने पीने के लिए पानी मागा तो एक युवक उठकर पानी लाया । गुरु ने उसके स्त्रियो जैसे कोमल और सुकुमार हाथ देखे तो बोले, "तुम्हारे हाथ इतने कोमल है कि मुझको सदेह है कि तुमने इनसे कभी काम लिया है, या नही" । युवक ने कहा कि गुरु का ख्याल ठीक था । वह अमीर घर मे पैदा हुआ था और उसके मा बाप उसको कोई काम नही करने देते थे । गुरु ने उसका लाया हुआ पानी फेककर कहा, "मै उन हाथो के द्वारा दी हुई कोई वस्तु नही लूगा जिसने कभी दूसरे की सेवा नही की" ।

हर एक सिख से अपेक्षा की जाती थी कि वह अपनी आय का दसवा भाग गुरु को भेट करे । सिख लोग बड़ी भक्ति और निष्ठा के साथ कर्तव्य को पूरा किया करते थे । सिर्फ पजाब से ही नही, सारे देश, काबुल, कन्धार, ढाका, असम तथा लका से भी लोग उनके पास आते थे ।

एक दिन एक सिख शाति की खोज मे उनके पास पहुचा । उसने गुरु से निवेदन किया, "मैने अब तक बहुत धन कमाया । अब मै आपके चरणो मे बैठकर, आपके उपदेशो द्वारा अपनी आत्मा को शाति देना चाहता हू" । गुरु उसको एक शिक्षक के सुपुर्द कर बोले, "इसे पढ़ा-लिखाकर इस योग्य बना दो कि गुरु के शब्दो को स्वयं पढ़ सके और दूसरो के लिए उन्हे लिपिबद्ध कर सके" ।

शिक्षक ने गुरु अमरदास की वाणी "आनन्द" का पहला पद उसे पढ़ाया तो उसने और आगे पढ़ने से इंकार कर दिया । पद यह था–

आनन्द भया, मेरी माये
सतगुरु मै पाया ।

गुरु ने कारण पूछा तो उसने कहा, "अब उसके बाद आपके पास पढ़ाने या मेरे पढ़ने को रह ही क्या गया है ? मुझको लगता है कि मैंने गुरु का वरदान पा लिया है । मेरे यहा आने का उद्देश्य भी तो इतना ही था" । गुरु उसकी बात से बहुत प्रभावित हुए और उसे छाती से लगाकर बोले, "धन्य हो तुम जिसने इतनी जल्दी और इतनी अच्छी तरह गुरु को पा लिया" ।

कहनसिह नाम का एक सिख गुरु का अनन्य भक्त था । एक दिन वह एक दीवार को लीप रहा था कि उधर से गुरु निकले और मिट्टी का एक छीटा उन पर गिर गया । गुरु ने हंसी मे कहा, "ऐसे आदमी को तो थप्पड़ लगना चाहिए" । बहुत से सिख तुरत दौडे हुए आये और लगे उस गरीब को पीटने । गुरु बहुत दुखी हुए और बोले, "तुम लोगो ने मेरे आदेश का खूब पालन किया, लेकिन मै पूछता हू कि यहा तुम लोगो मे ऐसा भी कोई है जो अपनी बेटी का ब्याह इससे करने को तैयार हो ? यह मेरा भक्त है । मैं चाहता हू कि इसे एक अच्छी पत्नी पुरस्कार के रूप मे मिले" । सिखो मे मौन छा गया । परतु कन्धार निवासी एक सिख अपनी कन्या का विवाह कहनसिह के साथ करने को तैयार हो गया । गुरु ने उसे पांच वीर पुत्र रत्नो का वरदान दिया ।

एक बार गुरु ने लगर के बारे मे बड़ी शिकायते सुनी तो एक दिन भेस बदल कर उसका निरीक्षण करने पहुचे । उन्होने भडारियो से भोजन मागा । उन लोगो ने भोजन देने मे आनाकानी की । किसी ने कहा भोजन तैयार नही है तो किसी और ने कहा कि पहले गुरु भोजन ग्रहण करेगे । इसके बाद गुरु कवि नन्दलाल के घर गये, और उनसे भोजन मागा । कवि तुरन्त उठ कर अदर गया और खाने की कुछ कच्ची चीजे लाकर दी । गुरु ने इस प्रसग की चर्चा अपनी सभा मे की । सभा को सबोधन करके उन्होंने कहा, "जब आपसे कोई भूखा आदमी भोजन मागे, तो कभी इंकार न करे । आप से जो कुछ हो सके, यथाशक्ति उसको दे । आपको गुरु का आशीर्वाद प्राप्त होगा । गरीब का मुंह ही गुरु का खजाना है" ।[1]

लगर मे अनाज की कमी देख एक दिन गुरु की माता ने सिखो को आदेश दिया कि वे बाहरी लोगो को भोजन न दिया करें । यह सूचना पाकर गुरु बहुत अप्रसन्न हुए, और शाप देते हुए बोले, "जिन लोगों ने मेरी मां को यह कुमति दी है, तुर्क उनका विनाश करें" । आखो मे आंसू भर कर मा ने अपने लिए और उन लोगों के लिए क्षमा मांगी,

1. रहितनामा – भाई चोपासिंह

जिन्होंने अनाज कम हो जाने की झूठी खबर उनको दी थी। गुरु ने कहा, "मा जब तक हमारा लगर दूसरों की सेवा करेगा तब तक गुरु का और मेरे खालसाओं का भडार कभी खाली नही होगा"। और उन्होंने उन सबको क्षमा कर दिया, जिन्होंने यह दुष्टता की थी।

इस बीच राजा अजमेरचद ने एक ब्राह्मण को गुरु के भक्त के छद्मवेश मे उनके दरबार मे भेजा। वास्तव मे ब्राह्मण एक भेदिया था। उसको गुरु के कार्यकलापों पर नजर रखने और खजाने का भेद लेने के लिए भेजा गया था। गुप्तरूप से सूचना देकर उसने गुरु के अस्तबल से दो सबसे बढ़िया घोड़ो की चोरी करवा दी। एक दिन उसने गुरु से मडी के निकट रावलसर के मेले मे पधारने के लिए बड़ी अनुनय विनय की। मेले मे पहाड़ी राजा लोग भी पहुचने वाले थे।

माता के समझाने बुझाने और अपने कुछ भक्तो के आग्रह पर गुरु ने उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया। मेले मे राजा लोग गुरु से मिलने के लिए उनके खेमे मे गये तो गुरु ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया। राजा और रानिया उनकी मधुर वाणी और सौजन्यपूर्ण व्यवहार से बहुत प्रभावित हुई। उन्होने गुरु से अनुरोध किया कि वे पिछली बातो को भूल जाये। गुरु ने कहा, "हमारे यहा अतीत को नही, बल्कि वर्तमान और भविष्य को ही अधिक महत्व दिया जाता है"।

गुरु ने वहा अतिथियो के सम्मान मे एक बड़े भोज का आयोजन किया, जिसमे उन्होने छोटे-बड़े, प्राय हरेक वर्ग के लोगो को आमत्रित किया। लेकिन उच्च वर्ण के ब्राह्मणो ने यह कहकर निमत्रण को अस्वीकार कर दिया, "गुरु ने हमारे पूर्वजो के धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। हम नीच जाति के लोगो के साथ पगत मे कैसे बैठ सकते है ? उनकी लीक पर चलकर अपने पुराने सस्कारो का परित्याग कैसे कर सकते है" ?

यह जानकर कि पहाड़ी लोगो मे अधविश्वास है और वे ज्योतिष मे विश्वास करते है, गुरु ने कहा, "अधविश्वास को हमारे सिख कभी नही मानेगे। उनके लिए जैसा यह क्षण है वैसा ही दूसरा भी। जिसका परमात्मा मे सचमुच विश्वास है वह ज्योतिष तथा इस प्रकार के अन्य अधविश्वासो द्वारा उसके रहस्यो को जानने की चेष्टा नही करेगा"।

कहते है कि हरगोपाल नाम के एक वैष्णव का पिता गुरु का भक्त बन गया था। पिता के इस नये धर्म से प्रभावित होकर हरगोपाल, मूल्यवान उपहार लेकर, गुरु के दर्शन के लिए गया, लेकिन उनको मास खाता देख उसका मन घृणा से भर उठा। उसने गुरु के सामने तो यही कहा कि उसको उन पर पूरा विश्वास है, और गुरु ने भी उसको लोहे का कड़ा पहनाकर आशीर्वाद दिया, लेकिन घर लौटते समय, राह में, उसने एक सिख को बताया कि गुरु के दर्शन के लिए उसने जो धन खर्च किया था वह निष्फल गया, क्योंकि गुरु मासाहारी है। उस सिख ने कहा, "जो धन तुमने हमारे रक्षक गुरु को भेट किया है, वह मुझसे ले लो, और उसके बदले मे गुरु ने तुमको जो कड़ा और आशीर्वाद दिया है

वह मुझको दे दो"। वैष्णव गुरु भक्त से अपना धन वापस पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। परतु कुछ ही दिनो बाद उसको व्यापार में इतना अधिक घाटा हुआ कि न तो सम्पत्ति ही उसके पास रही और न मन की शांति। वह गुरु के पास वापस गया और उनसे बहुत क्षमा याचना की। गुरु ने उसको क्षमा कर दिया और कहा, "गुरु परमेश्वर द्वारा प्रदान की हुई हर वस्तु को ग्रहण करता है। वह स्वाद के लिए नही खाता, बल्कि इसलिए खाता है कि वह स्वस्थ रहकर ईश्वर के काम कर सके। लोग भोजन, कपड़े, धार्मिक उपचार, जाति, सप्रदाय और धार्मिक विश्वासो को लेकर झगड़ते हैं। इस प्रकार वे एक दूसरे से अलग हो जाते रहे हैं। मेरा अभिप्राय है मनुष्य की एक बिरादरी स्थापित करना। फिर ऐसा कैसे हो सकता है कि मै एक व्यक्ति को प्यार करू और दूसरे से घृणा? जिन्होने अपना जीवन और कर्म परमेश्वर को अर्पित कर दिया है वे उसकी दी हुई प्रत्येक वस्तु को पवित्र और मगलमय मानते हैं। मेरे सिख कभी भी दान या भेंट पूजा पर जीवन निर्वाह नही करेगे। वे ईमानदारी से, अपनी मेहनत से अपनी रोजी कमायेंगे, और उसे दूसरो के साथ मिल कर भोगेगे। उनके दिलो मे सदा परमेश्वर का वास होगा। शेष सब कुछ तुच्छ है"।

एक बार एक ब्राह्मण ने गुरु से फरियाद की कि एक पठान ने उसकी पत्नी का अपहरण कर लिया। गुरु ने तुरत ही अपने बेटे अजित सिह के नेतृत्व मे सौ सिपाहियो को ब्राह्मण की पत्नी को छुड़ाकर लाने के लिए भेज दिया । रात के समय अजित सिह बिजली की तरह पठानो पर टूट पड़ा, और ब्राह्मणी के साथ साथ बहुत सा लूट का माल भी लाकर गुरु को नजर किया । ब्राह्मण को उसकी पत्नी वापस मिल गयी, और पठानो को उनके कुकर्म की उचित सजा ।

गुरु का यश दूर दूर तक फैल रहा था। पहाड़ी राजाओ को इससे बड़ी चिता होने लगी थी। उन दिनों दो मुसलमान सेनापति सैयद बेग और अलीफ खां दिल्ली से लाहौर की ओर बढ़ रहे थे। राजा अजमेरचद ने उनसे सहायता मागने का अच्छा अवसर देखा। मुसलमान सेनापति इस शर्त पर राजी हुए कि उन्हे प्रतिदिन एक हजार रुपये दिये जाये। गुरु के पावन चरित्र की बात सुनकर सैयद बेग ने उनके विरुद्ध लड़ने से इकार ही नही कर दिया, बल्कि स्वय दीक्षा लेकर सिख बन गया। उन्होंने मिलकर अलीफ खां के दात खट्टे कर दिये और उसको अपनी सेना के साथ भागना पड़ा। सैयद बेग ने अपनी सारी दौलत गुरु के नाम कर दी, और अपना जीवन उन्ही की सेवा मे लगाने का सकल्प कर लिया।

थोड़े दिनो की शाति के बाद, पहाड़ी राजाओ ने दस हजार की सेना लेकर आनन्दपुर पर फिर हमला बोल दिया। गुरु के पास केवल आठ सौ आदमी थे लेकिन उन्होने उन्हे इस बार खुले मैदान मे दुश्मन का सामना करने का आदेश दिया। किले की दीवारो के

पीछे से नही ।

भयानक रक्तपात हुआ । गुरु ने खालसाओ को आदेश दिया कि वे ऐसे स्थानो से तीर और बदूक चलाये जो उनके पक्ष मे हो, दुश्मनो का पीछा न करे और आमने सामने लड़ने के लिए न ललकारे । लेकिन जब सिख फौजो ने दुश्मनो को पीछे हटते देखा तो उनका पीछा किया । गुरु बहुत अप्रसन्न हुए, क्योकि वह जान गये थे कि उनको सख्या मे बहुत कम जानकर दुश्मन उन पर टूट पडेगे । हुआ भी ऐसा ही और उनको भारी क्षति पहुची । अब गुरु स्वयं मैदान मे आये, और इससे खालसाओ मे इतना उत्साह भर गया कि उन्होने दुश्मनों के पैर उखाड दिये ।

इस युद्ध के बाद जो विश्राम मिला वह भी बहुत अल्पकालीन साबित हुआ । पहाडी राजाओ के बारम्बार आग्रह करने पर शाही फौजे, सैयद खा के नेतृत्व मे, गुरु के निवास स्थान की ओर बढ चली । उस समय गुरु के पास केवल पांच सौ आदमी थे । उन्होने उनको सैयद बेग और मैमून खा के अधीन कर दिया । यह सुनकर कि बहुत बडी फौज उनकी ओर बढ़ रही है, पहले तो वे हतोत्साह हो गये लेकिन गुरु ने उनका साहस बढ़ाया और कहा, “लड़ाई मे जीत या हार हृदय कराता है । सैनिको या शस्त्रो की सख्या नही । और ईश्वर उसी के साथ होता है जो धर्म के लिए लड़ता है” ।

सैयद बेग ने एक सिख राजा को द्वद्व के लिए ललकारा और उसकी हत्या कर डाली । यह देखकर और यह सोचकर कि सैयद बेग मुगल सेना को धोखा देकर बागी बन गया, एक मुगल सरदार दीन को इतना क्रोध आया कि उसने सैयद बेग पर पीछे से वार करके उसे मार डाला । मैमून खां और दूसरे सिख बड़ी दिलेरी से लड़े, और बहुत से दुश्मनो को मौत के घाट उतार दिया ।(सिखो की ऐसी दिलेरी देखकर सेनापति सैयद खां स्वय घोड़े पर सवार होकर गुरु की ओर बढ़ा लेकिन जब उनके पवित्र और शात मुखमडल को देखा तो ठिठक कर बोला, “पहले आप वार कीजिये । पहला वार करने को मेरा दिल नही होता” । गुरु ने कहा, “पहला वार करना मेरे घराने की नीति नही है । यदि तुम वार नही करोगे तो मैं भी नही करूगा” । इन शब्दो को सुनकर मुगल सेनापति इतना प्रभावित हुआ कि वह घोड़े से उतरकर गुरु के चरणो पर गिर पड़ा । गुरु ने उसको आशीर्वाद देकर कहा, “परमेश्वर इहलोक और परलोक मे तुम्हारी रक्षा करेगा” । सैयद खा अपनी फौज को तो नही रोक सका जो सिखो के साथ बराबर लड़ रही थी । लेकिन वह स्वयं दूर चला गया और रमजान खां ने उसका स्थान ले लिया । गुरु के तीर ने उसके घोड़े के प्राण ले लिये । पर इस बार उनकी सेना कम थी और जीत कठिन । मुगलो ने आनन्दपुर को लूटा और उस पर कब्जा कर लिया । गुरु ने आनन्दपुर छोड़ दिया ।

सिखों को अपनी पराजय से इतनी ग्लानि हुई कि उन्होने गुरु से शत्रुओ का पीछा करने की अनुमति मांगी । उन्होने उस अपमानजनक जीवन से लड़ते हुए मर जाना ही

अधिक श्रेयस्कर समझा । गुरु ने आज्ञा दे दी और सिखो ने एक बार फिर भयकर युद्ध किया । उन्होने शत्रुओ को बड़ी सख्या मे मौत के घाट उतारा और बहुत सा माल भी उनके हाथ लगा । इस युद्ध मे बहुत से सिखो ने अपने प्राण गवाए । जो बचे उन्होने गुरु को असीम प्रसन्नता प्रदान की । गुरु आनन्दपुर लौट गये ।

अपनी विशाल और महापराक्रमी सेना के पराजय से मुगल शहंशाह को गहरा धक्का पहुचा । काजी ने उसको राय दी कि वह गुरु को अपने दरबार मे बुलाये । औरंगजेब ने काजी की बात मान ली और गुरु को एक संदेश भेजा जिसमे उसने कहा था, "हम दोनो का मजहब एक खुदा मे यकीन रखता है । फिर हमारे बीच गलतफहमी क्यो हो ? जो हुकूमत और बादशाहत अल्लाहताला ने मुझको बख्शी है उसके आगे सर झुकाने के सिवा आपके या दूसरे लोगों के पास और कोई चारा नही है । अगर आपको किसी तरह का कोई रंज है तो आप यहा तशरीफ ले आये और मुझसे मिलकर गलतफहमी को दूर करें । आपके साथ मैं वैसा ही सलूक करूगा जैसा एक धर्मात्मा के साथ करना चाहिए । लेकिन मेरी हुकूमत को चुनौती न दे । नही तो आपसे फैसला करने के लिए मुझको खुद आना पड़ेगा" ।

गुरु ने उसका उत्तर यो दिया, "सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न तो यहां केवल सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही है । शहशाह और मैं तो केवल उसके अनुचर हैं लेकिन आप यह नही मानते और हिदुओं पर अत्याचार करते हैं, और न्याय करने के बजाय उनके साथ अन्याय करते है और उनके धर्म को तथा उनको चोट पहुंचाते हैं । भगवान ने मुझे एक ही उद्देश्य से भेजा है – धरती पर न्याय स्थापित करने के लिए । जब तक हमारे रास्ते अलग अलग है, हमारे बीचि शाति कैसे रह सकती है" ? गुरु ने बादशाह के दूत का आदर किया और उसको सम्मानपूर्वक चोगा भेट किया ।

7

जे तौ प्रेम खेलन का चाव,
सिर धर तली गली मोरि आओ ।

– गुरु नानक

देश के हर भाग, विशेषकर पंजाब से, सिख लोग भारी संख्या मे गुरु के दर्शन के लिए आया करते थे । गुरु की आज्ञानुसार, वे अपने साथ भेट मे घोड़े और शस्त्र लाते थे । आनन्दपुर मे वे युद्धकौशल भी सीखते थे । यद्यपि गुरु के चारो ओर शांति का वातावरण था लेकिन वह वैसी ही शाति थी जैसी भारी तूफान के आने के पहले होती है । इसीलिए वे किसी भी आकस्मिक चुनौती के लिए अपनी सेनाओ को हर समय सतर्क रखते थे ।

पहाड़ी राजा लोग, मुगलो के साथ मिलकर, सिखो को अतिम और निर्णयात्मक युद्ध मे मात देने की योजना बना रहे थे । इस बार स्वयं राजा अजमेरचंद को अपना प्रतिनिधि बनाकर बादशाह के पास भेजा जहां वह दक्षिण के सुल्तानों से लोहा ले रहा था । अजमेरचद खुद बादशाह से मिला और राजाओ की ओर से दरख्वास्त पेश की जिसमे उसके घराने के पिछले सौ वर्षो की उन राज्यद्रोही करतूतों का ब्यौरा विस्तार से दिया गया था जिनके परिणामस्वरूप उनके पिता और परपितामह को शहीद होना पड़ा था । बादशाह को बताया गया था कि गुरु ने एक नये धर्म की स्थापना की थी और चाहते थे कि सभी हिंदू नये धर्म को अपनाकर मुगल साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे । इस समाचार से चिन्तित होकर बादशाह ने तुरंत हुक्म जारी किया कि दिल्ली, सरहिन्द और लाहौर मे जितनी भी सेनाए है, वे सरहिन्द के सूबेदार वजीर खा के नेतृत्व मे आनन्दपुर की ओर अभियान करे । पहाड़ी सेनाए भी उनसे मिल गयी । दिल्ली के गुरु के भक्तो ने उनको आनेवाले तूफान की सूचना दी । शाही राजधानी की सेनाओ को तो वहां से नही हटाया जा सका, लेकिन सरहिन्द और लाहौर की फौजे भी गुरु के थोड़े से सशस्त्र आदमियो के मुकाबले मे बहुत विशाल और दुर्जेय थी । जैसे ही दुश्मनो की सेनाएं आनन्दपुर की सीमा तक पहुंचीं, सिखों ने गोलाबारी शुरू की और दुश्मनो के बहुत से सिपाहियो और घोड़ों को मार गिराया । गुरु की सेना किले के अदर से ही गोलाबारी कर रही थी, और दुश्मन बिना किसी बचाव के बाहर थे, और वह भी निचली जमीन पर । दिन की लड़ाई समाप्त होने पर गुरु के दो सेनापति उदयसिंह और दयासिह

को आदेश मिला कि वे दुश्मनो को द्वद्व के लिए ललकारे । अपने तूफानी दस्तो के साथ दुश्मनो के खेमे मे घुस कर उन्होने बडी मारकाट मचायी । फौजो को फिर से सगठित करने के बाद दुश्मनो को दूसरी चाल चलनी पडी । लोगो को अपना यह सदेह कि गुरु मे कोई दैवी चमत्कार है, सच जान पड रहा था । मेकालिफ के अनुसार पहले दिन की लडाई मे दुश्मनो के नौ सौ आदमी मरे ।

दूसरे दिन, घोडे पर सवार होकर, गुरु स्वय मैदान मे आये । गुरु और उनके साथियो के अचूक निशानो से दुश्मनो के छक्के छूट गये । जब गुरु को जीवित या मृत पकड़ने की सभी चाले व्यर्थ हो गयी तो शत्रुओ ने एक दूसरी तरकीब सोची । उन्होने बाहर से आनेवाली सभी वस्तुओ पर रोक लगा दी, ताकि गुरु तथा उनके सैनिक भूख से तड़प तड़प कर मर जाये । गुरु ने अपने सेवको को आदेश दिया कि किले के बाहर न निकले । उन्होने अपने बेटे अजितसिह और अन्य सेनापतियो को किले की सुरक्षा का भार सौपा । शत्रुओ ने आनन्दपुर के सभी रास्तो की नाकाबदी कर दी थी । रात के अधेरे मे सिखो ने शत्रुओ पर अचानक आक्रमण करके भारी मारकाट मचायी तथा बहुत सा सामान हथिया लिया । दिन निकलने पर शत्रुओ ने एक और हमला किया परतु सिखो की तोपो के आगे उनकी एक भी न चली ।

इन्ही दिनो गुरु को यह सूचना मिली कि भाई कन्हैया नाम का एक सिख, शत्रु और मित्र का भेदभाव किये बिना, युद्ध के मैदान मे सब घायल सैनिको को पानी पिला रहा है । उन्होने उसको बुलवा कर पूछा कि वह शत्रुओ को पानी क्यो पिला रहा है ? कन्हैया ने उत्तर दिया, "जब से आपने आदमी आदमी मे भेद न करने का पाठ पढ़ाया है, इन घायलो मे मैं आपका ही रूप देखता हू" ।

उसके उत्तर से गुरु इतने प्रसन्न हुए कि उसको उन्होने मुक्ति का वरदान दिया । उसी दिन से उस मार्ग पर चलने वाले सिख सेवापथी कहलाते है । जाति और धर्म का भेद किये बिना, मानवमात्र की निष्काम और नि.स्वार्थ सेवा ही उनके जीवन का सिद्धात है ।

किले के अदर घिरी गुरु की सेना की दशा दिन पर दिन खराब होती जा रही थी । रात की लूट मे प्राप्त सामग्री के बावजूद भी किले मे जो रसद जमा थी उससे काम चलाना असभव हो गया । बाहर से पानी का आना भी बद हो गया । भुखमरी उनके चेहरो पर झलकने लगी थी । कुछ लोगो ने गुरु की माता से शिकायत की कि उनकी मुसीबतो को व्यर्थ ही बढ़ाया जा रहा है, क्योकि गुरु उनको बाहर निकलकर लड़ने की अनुमति नही देते । बाहर निकलने का मौका उनको कभी कभी रात मे ही दिया जाता था । परतु रात मे लूटमार करके शत्रुओ से जो सामग्री प्राप्त की गयी थी वह काफी नही थी । उससे ज्यादा दिनो तक गुजारा नही चल सकता था । रात की इन टक्करो के कारण उनकी काफी हानि भी होती थी । कई कई दिनो तक उन्हे केवल पेड़ों के पत्ते खाकर

निर्वाह करना पडा । वे वृक्ष की छाल को पीसकर, उसके आटे से रोटियां बनाते थे । इस स्थिति को बहुत से सिख नही सह सके और उन्होने गुरु का साथ छोडकर चले जाने की अनुमति मागी । उनके इस व्यवहार से गुरु को बहुत दुख हुआ । उन्होने कहा कि जो जाना चाहते है उनको मै जाने की आज्ञा दे दूगा, लेकिन वह मुझको लिखकर दे दे कि आज से न मैं उनका गुरु हू और न वे मेरे सिख । कुछ लोगो ने ऐसा कर भी डाला । परतु, जैसा कि हमे बाद मे मालूम होगा, जब गुरु को छोड़कर वे अपने घर पहुचे तो उनके परिवार की स्त्रियो ने उनकी इतनी भर्त्सना की और उनको इतना लज्जित किया कि उन्हे फिर युद्ध मे लौटना पड़ा । मुक्तसर मे शत्रुओं से लडते हुए वे सब के सब शहीद हो गये ।/पहाड़ी राजाओ ने जब देखा कि रसद आदि के समाप्त हो जाने पर और सात महीने की नाकाबंदी के बाद भी सिखो ने उनका लोहा नही माना तो उन्होने एक और चाल चली । एक ब्राह्मण को उन्होने अपना दूत बनाकर भेजा । उसने हिंदुओ और मुसलमानो, दोनो की ओर से, सौगध खायी कि यदि गुरु किले को छोड़कर चले जाये तो शत्रु सेना वापस लौट जायेगी और गुरु, कुछ समय बाद, जब उनका जी चाहे, किले मे फिर वापस आ सकते हैं । यही नही, वे अपने साथ अपनी सारी चल सपत्ति भी ले जा सकते है । गुरु ताड़ गये कि यह चाल सिर्फ उनको किले से बाहर निकालने के लिए चली जा रही है । उन्होंने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, परतु जब उनकी माता और उनके अनुयायियों ने उनपर बहुत दबाव डाला, तो किले को छोड़ने के सिवा उनको और कोई चारा न दीखा । फिर भी, शत्रुओं की परीक्षा लेने के उद्देश्य से, उन्होने पहले अपनी संपत्ति को गाड़ियो मे लदवाकर भेजने का हुक्म दिया । उसका प्रबंध तुरत किया गया । गुरु ने तमाम बेकार चीजे गाड़ियों में लदवा दी, और ऊपर से कीमखाब की चादरो से ढकवा दिया । बैलगाड़ियो का कारवां रात के सन्नाटे में, और मशालो की रोशनी मे गुजरने वाला था । जब कारवा शत्रुओ के खेमे के निकट पहुंचा तो उन्होने अपना वचन भुलाकर उस पर हमला कर दिया और सारा सामान लूट ले गये । लुटेरो ने सुबह लूट का माल देखा तो अपनी मूर्खता पर बहुत लज्जित हुए । उन्होंने जान लिया कि गुरु उनके फंदे में नही फसेगे ।

गुरु ने अपने अनुयायियो से कहा कि उन्होंने जो सोचा था वही हुआ । लेकिन अपनी गलत चाल पर पछताते हुए, मुगलों ने एक और संदेश गुरु के पास भेजा । गुरु को विश्वास दिलाया गया कि उसे बादशाह ने स्वयं अपने हाथ से लिखकर भेजा है । उसमे यह आश्वासन दिया गया था, "शाही फौज ने आपके साथ जो बुरा सुलूक किया है उसके लिए हमको निहायत अफसोस है । अगर आप आनन्दपुर छोड़ने को तैयार है तो शाही सेना आपकी ओर हिफाजत का रुख अख्तियार करेगी" ।

सिख इस समय अत्यंत शोचनीय परिस्थिति मे थे और किले से बाहर निकलने के

लिए बेचैन थे । गुरु की माता ने भी उन सिखो के साथ मिलकर गुरु से बादशाह की शर्त को मजूर करने का आग्रह किया । वह नही चाहती थी कि उनके निर्दोष सिख अनुचर किले मे भुखमरी का शिकार बने । उनका ख्याल था कि शाही सेना ने विश्वासघात भी किया तो भी युद्ध मे लडते हुए वीरगति को प्राप्त होना, भूख से तडप तडपकर मरने से कही अच्छा है । गुरु ने भी इस दलील को स्वीकार किया । जो सामान अपने साथ ले जा सकते थे, ले गये, जो नही ले जा सके उनमे से कुछ तो जला दिया और कुछ जमीन मे गाड़ दिया ।

सबसे पहले गुरु की माता उनके पाच वर्षीय और सात वर्षीय दो पुत्रो और उनकी पत्नियो के साथ रवाना हुई । गुरु अपने पाच सौ अनुयायियो और दो ज्येष्ठ पुत्रो के साथ रात्रि के घोर अंधकार मे, जब मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था, आनन्दपुर दुर्ग से विदा हुए । यह सन् 1704 ई की बात है । दिसम्बर का महीना था और कड़ाके की सर्दी पड रही थी ।

सिरसा नामक स्थल पर पहुचकर गुरु अपनी माता और छोटे पुत्रो से मिले । अपने एक सिख भक्त को उनकी सेवा मे नियुक्त कर उन्हे दिल्ली पहुचाने का आदेश दिया । सिख उन्हे रोपड़ नामक स्थान पर ले जाने के बजाय अपने एक सबधी के घर ले गया । वहा पर गुरु की माता की मुलाकात गगू नामक एक ब्राह्मण से हुई जो पहले कभी उनके यहा रसोइया रह चुका था । गगू उन्हे अपने गाव खेरी ले गया जो सरहिन्द के पास ही था । बाद मे उसने धोखे से उन्हे सरहिन्द के नवाब के हवाले कर दिया । नवाब ने उनसे कह दिया कि वे इस्लाम या मौत मे से किसी एक वस्तु को चुन ले । बडे लड़के ने, जिसकी आयु केवल सात वर्ष की थी, मौत का हुक्म सुनकर दृढ़तापूर्वक कहा, "हम गोविन्द सिह की संतान है जो न कभी किसी से हारा और न कभी शत्रुओं के आगे झुका । हमारे दादा धर्म के लिए शहीद हुए थे, फिर हम भी वैसा ही करेगे" । उनसे जब नवाब के आगे झुकने को कहा गया तो वे नन्हे वीर सीना तानकर खडे हो गये । उन्होने नवाब को, जो उनके दादा के हत्यारे दुष्ट शासक का प्रतिनिधि था, सलाम करने से इंकार कर दिया । उनसे जब कहा गया कि उनका पिता मर चुका है और उनके लिए किसी प्रकार की आशा नही है तो उन्होने उत्तर दिया, "हमारे पिता अमर हैं । मौत उनका कुछ नही बिगाड़ सकती" । इन भोले भाले बालको की वीरता और निर्भीकता की सराहना इतिहासकारो ने मुक्तकठ से की है ।

उन मासूम बच्चो के फौलादी संकल्प और अडिग विश्वास को देख कर नवाब ने उन्हे जिदा ही दीवार में चुन देने का हुक्म दिया ।[1] गोविन्द सिह के पुत्रों से इसी अदम्य साहस की आशा की जा सकती थी । इस हृदयविदारक घटना की खबर मिलते ही गुरु

1 कुछ इतिहासकारों का कहना है कि उन्हें कत्ल कर दिया गया था ।

की वृद्धा माता अचेत हो गयीं, और उनकी चेतना फिर नही लौटी ।

मुगल अधिकारियो को सदेह था कि ब्राह्मण ने गुरु की माता के आभूषण और अन्य संपत्ति को हड़पकर कही छिपा रखा है । उसके घर की तलाशी ली गयी । जब ब्राह्मण ने यह बताने से इंकार कर दिया कि धन कहा गड़ा हुआ है तो उसको सता सताकर मार डाला गया । गुरु के नन्हे वीर पुत्रो के साथ जो घृणित पाशविक व्यवहार किया गया था उसके विरुद्ध केवल एक व्यक्ति ने आवाज उठायी । वह थे मालेरकोटला के नवाब । उन्होने कहा था कि पिता के अपराधो की सजा इन भोले भाले मासूम बालको को नही दी जानी चाहिए । अगर हम गुरु को नही हरा सके तो उसका बदला इन बेचारे कोमल बालको से क्यो ले । सिखो ने उसकी इस कृपा को ध्यान में रखा और जब बंदासिह बहादुर के नेतृत्व मे सिखो ने सरहिन्द को बुरी तरह तहस नहस कर डाला था और वजीर खां तथा उसके परिवार की निर्ममता से हत्या कर दी थी, तो मालेरकोटला के नवाब को उन्होने सुरक्षित छोड़ दिया था ।[1]

मुगल सेना अब भी गुरु का पीछा कर रही थी । गुरु ने चमकोर के एक पुराने किले मे आश्रय लिया, जहां बाद मे घमासान लड़ाई हुई । परिणाम इसका यह हुआ कि उन चालीस सिखों[2] में से, जो उनके साथ थे, पांच के अलावा बाकी सभी शहीद हो गये । अन्य सिख सिरसा नदी के किनारे मुगलो का आक्रमण रोकने के लिए पीछे रह गये थे ताकि गुरु को किसी सुरक्षित स्थान तक पहुंचने का समय मिल जाये । चमकोर के युद्ध मे गुरु के दो वीर बेटे अजित और जूझर भी वीरगति को प्राप्त हुए । गुरु साहब का कहना था कि उनके दो बेटो को उनके सिखो के बाद नही बल्कि पहले शहीद होना चाहिए । अपनी आंखो के आगे उन्हे गिरते देखकर गुरु ने ईश्वर को धन्यवाद देते हुए कहा "हे सर्वशक्तिमान, तेरी यह अमानत थी । मैंने इन्हें तेरे हवाले कर दिया" ।

गुरु का अपना जीवन इस समय खतरे मे था । फिर भी उन्होंने उन पाच सैनिको को छोड़कर जाने से इंकार कर दिया । उन्होने गुरु से आग्रह किया कि अगर उनकी जान बच जायेगी तो उनका पंथ पुन· एक बार प्रचंड शक्ति के रूप मे उठ सकेगा । परंतु गुरु ने उत्तर दिया, "मेरा जीवन मेरे प्रिय सिखो के जीवन से अधिक कीमती नही है । मै युद्ध मे तुम लोगों के साथ प्राण दूगा । इसके अलावा और कोई रास्ता मुझको नजर नही

---

1 टिप्पणी . 1947 में, पजाब के बटवारे के समय जब भयानक साम्प्रदायिक दगे हुए और जब हिंदू सिख और मुसलमान विभाजित पजाब में अपने अपने देश को जा रहे थे तो भी सिखों ने मालेरकोटला के किसी भी मुसलमान को नही छुआ । यही नही उनसे बहुत आग्रह किया गया कि वे अपने नवाब के साथ भारत में ही रहें ।

2. सभवत यही वे चालीस सिख थे जिन्हें गुरु ने 'मुक्ते' कह कर नवाजा था । उन सिखों का नाम प्रार्थना (अरदास) में लिया जाता है ।

आता"। सिख बहुत दुखी हुए। उन्होने एक उपाय सोचा। पांचो ने मिलकर एक प्रस्ताव (गुरुमता) तैयार किया और उसे गुरु के सामने पेश करके कहा, "आप सदैव यही कहते रहे है कि जहा भी तुम मे पाच सिख समर्पण की भावना से एकत्रित होगे वहा मैं अवश्य मौजूद रहूंगा और तुम जो भी आदेश दोगे, उसे पूरा करूगा। हम इस समय गुरु के रूप मे आपको आदेश देते है कि आप जल्दी से जल्दी इस किले को छोड़ दे और बाद मे हमे शत्रु से अच्छी तरह निपटने का मौका तलाश करने दे"।

गुरु निरुपाय हो गये। उनका अपना आदेश, जो वे दूसरो को देते थे, आज स्वयं उन्ही पर लागू किया जा रहा था। गुरु ने इस आदेश का पालन करने का ही निश्चय किया। उन्होने पाचो को अपनी छाती से लगाया और सजल नेत्रो से विदा हुए। जाते समय उन्हे आशीर्वाद देते हुए कहा, "परमेश्वर इहलोक और परलोक मे तुम्हारी रक्षा करेगे"। पांचो मे से दो तो वही मर मिटने के लिए रुक गये। उनमे से एक ने, जिसका नाम सन्तसिह था, गुरु की कलगी धारण कर ली और ऐसा स्वाग भरा कि शत्रु उसे ही गुरु गोविन्द सिह समझ बैठे। जब उन्होंने देखा कि जिसको उन्होने मार गिराया था, वह वास्तव मे गुरु का एक सेवक मात्र है, तो उन्हे बड़ी निराशा हुई। प्रस्थान करने के पहले गुरु ने दो तीर छोड़े जो मुगल मशालचियो की मशालो को गिराते हुए उनकी छाती के आरपार हो गये। उसके बाद अधेरे की चादर ओढ़े, नगे पांव चलते हुए, गुरु माछीवाड़ के वन मे पहुचे जो रोपड़ और लुधियाना के बीच मे है। वहां पहुंचकर वे थकान के कारण लेट गये। वही पूर्व योजना के अनुसार अन्य तीन सिखो से उनकी मुलाकात हुई।

गुरु को बताया गया कि मुगल सैनिको की एक टुकड़ी अब भी उनका पीछा कर रही है, इसलिए वहां से हट जाना आवश्यक है। पैदल चलने के कारण गुरु के पैरो मे छाले पड़ गये थे। उनसे चला नही जा रहा था। एक सिख के घर, जहा वे एक दिन के लिए ठहर गये थे, उनकी मुलाकात दो पठानो से हुई जो पहले कभी गुरु के दर्शन के लिए उनके दरबार मे गये थे। उन्होने यह तरकीब सोची कि दो पठान और दो सिख गुरु को एक चारपाई पर लिटा कर ले चले, और एक सिख उनकी सेवा करता हुआ साथ साथ चले। गुरु को एक मुसलमान फकीर के भेस मे मुगल फौजो के बीच से निकाला जायेगा, और कहा जायेगा कि वह हाल मे ही हज करके लौटे हैं और आजकल उनका व्रत चल रहा है। रास्ते में डेरा डाले हुए मुगल सैनिको ने उनसे अपने साथ भोजन करने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि तभी पीर साहब को सुरक्षित जाने दिया जाएगा। गुरु ने व्रत का बहाना बनाकर उनसे क्षमा मांगी। जौ के कच्चे दानो के सिवा और कुछ खाने से उन्होने इंकार कर दिया। लेकिन उन्होने तीनों सिखो को राय दी कि जो कुछ मिले उसे भगवान का नाम लेकर ग्रहण करे।

रास्ते मे उनकी मुलाकात महत कृपाल से हुई जो भगानी के युद्ध मे उनकी ओर से लडा था । कृपाल मुगलो के भय से गुरु साहब को अपने पास न रख सका । उसके बाद गुरु साहब जगराव और रायकोट गये और वहां के चौधरी राय कल्हां से मिले । उसने अपने गाव जाटपुरा मे उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया । वहा से वे लक्खी वन के लिए रवाना हुए, जहां प्राकृतिक सौंदर्य के बीच, उन्होने कुछ दिनो के लिए पडाव डाला । गुरु के आगमन की खबर सुनकर वहा के लोग आनन्द विभोर हो गये । गुरु ने खुद लिखा है, "जब उन्होंने अपने रखवाले के आगमन के बारे मे सुना तो वे अधीर हो उठे और प्रसन्न मन से ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की । उन्होने खाना पानी भी नही छुआ और दूसरो की प्रतीक्षा किये बिना गुरु के दर्शन के लिये दौड गये" । वही पर गुरु ने अपने दो शहीद पुत्रो और पूज्य माता के बलिदान की खबर सुनी । गुरु ने सदा की तरह शात मन से घुटने टेके तथा हाथ ऊपर उठा कर कहा, "हे, सर्वशक्तिमान, तेरी यह अमानत भी मैने तुझे लौटा दी" । एक पौधे को अपने तेग से कुरेदते हुए उन्होंने कहा, "जिस तरह मैने इस पौधे को जड़ से अलग कर दिया है । उसी तरह ईश्वर अत्याचार के इस साम्राज्य को समूल नष्ट करेगा । और उसका वक्त अब आ पहुचा है" ।

८

चूंकार अजहमा हिलते दरगुजस्त
हलाल अस्त बुरदन बशमशीर दस्त ।

— जफ़रनामा

गुरु साहब जाटपुरा से दीना की ओर चल पडे । रास्ते मे एक सिख ने उन्हे अपना घोडा भेट कर दिया था । इससे मुगल सेना की पहुच के बाहर निकल जाने मे उनको सुविधा हुई । दीना मे वे कुछ दिन ठहरे । वही उन्होने फारसी पद्य मे औरगजेब के नाम एक पत्र लिखा जो जफरनामा (विजय-पत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस पत्र की एक एक पंक्ति मे अत्याचारी और पापपूर्ण सत्ता के प्रति विद्रोह और घृणा के भाव भरे थे और इस चरम विधान का प्रतिपादन किया गया था कि अत मे विजय उसी की होती है जिसके पक्ष मे न्याय होता है । मानवता का कल्याण भी वही कर सकता है सत्य और न्याय जिसके साथ होते है ।

इस काव्यमय पत्र मे गुरु साहब ने अन्य बातो के अलावा यह भी लिखा कि "ऐ शहशाह, मुझको तुम्हारी कसमो पर कोई भरोसा नही । तुम कसम खाते हो एक राह पर चलने की, और चलते हो दूसरी राह पर । तुम्हारे वायदो पर मैने भरोसा न किया होता तो मै अपनी फौज को आनन्दपुर से न हटाता । चमकौर मे चालीस शूरवीरो की मेरी छोटी सी सैनिक टुकड़ी क्या कर सकती थी जब तुम्हारी एक लाख की सेना धोखा देकर उन पर टूट पड़ी ?

"जब मनुष्य के सामने कोई और रास्ता न रह जाये तो तलवार उठाना उसका धर्म हो जाता है । जब तुम्हारी फौज मेरे खिलाफ बढ़ी तो मैने उसे अपने तीरो का थोडा सा मजा चखाया । तुम्हारे कुछ सिपाही भाग खड़े हुए और कुछ परलोक सिधार गये । ईश्वर की कृपा से मै साफ बच निकला । तुम्हारी सारी फौज मेरा बाल बाका न कर सकी ।

"मै साफ साफ कहता हू कि तुम न खुदा मे यकीन करते हो और न उसके रसूल मे । तुम अपनी सौगध के भी पाबद नही हो । बात बात मे झूठ बोलते हो । तुमको खुदा मे नही बल्कि दुनियावी दौलत और अपनी ताकत पर यकीन है । अगर यहा मेरे सामने हजरत मोहम्मद मौजूद होते तो मै उन्हे तुम्हारी धोखेबाजी का इल्म कराता । तुम्हारे दूत और तुम्हारे काजी ने मेरे आगे तुम्हारी ओर से कसम खायी और तुमने मुझे धोखा दिया । अगर तुम अब भी अपनी करतूतो पर पछताओ और मुझसे मिलने बैराड़ो के देश आने

को तैयार हो, तो ये लोग, जो मेरे साथी है, तुम्हे हिफाजत के साथ मेरे पास ला सकते है। काश कि मै आमने सामने तुमसे बातचीत कर सकता।

"मै तो सिर्फ ईश्वर का वफादार हू। तुम्हारे खुदा ने क्या तुमसे यही कहा है कि दूसरो पर जुल्म ढाओ ? तुम्हारी शाही हुकूमत पर, तुम्हारी वफा पर और तुम पर मै लानत भेजता हू। लेकिन एक बात सुन लो। अपनी तलवार बेकसूर लोगो का खून करने के लिए मत उठाओ। अगर ऐसा करोगे तो खुदा तुम्हे इसकी सजा देगा। खुदा से डरो। वही इस धरती और जन्नत का मालिक है। उसका बदला बहुत भयकर होता है। वह किसी से नही डरता, और हमेशा ही दीन-दुखियो का मददगार रहा है। तुमने मेरे चार बेटो को मार दिया तो क्या हुआ ? याद रखो, साप अब भी कुंडली मार कर फुफ्कार रहा है। कुछ चिनगारियो को बुझाकर तुम आग को ठडा नही कर सकते। तुम्हारी फौज के वायदे पर भरोसा करके मैने आनन्दपुर के किले से जो सामान भेजा था, उसे उसने लूट लिया। लेकिन जैसे तुम खुदा को भूल गये हो वैसे ही खुदा भी तुम्हें भुला देगा। तुम्हारे पापो का फल जरूर मिलेगा। लेकिन मुझको तो शक है कि तुम खुदा को जानते भी हो या नही। तुम्हारे पास सल्तनत है, दौलत है, ताकत है, तुम्हारी तबीयत मे फैयाजी भी है, तुम बहादुर भी हो, लेकिन धर्म से कोसो दूर हो।

"मेरा रखवाला भगवान है – वह भगवान जिसके ऊपर और कोई नही है। जो ईमानदारी से काम करता है उसकी रक्षा भगवान खुद करता है। जिसका साथी और सहारा देने वाला ऊपर बैठा हुआ ईश्वर है उसका कोई बाल भी कैसे बाका कर सकता है। जिंदगी तो कुछ लम्हो के लिए है। जो आया है, वह जायेगा भी। इसलिए कोई कितना भी ताकतवर क्यो न हो, उसे कमजोर लोगो को सताकर अपनी जड़ नही खोदनी चाहिए।"

गुरु साहब ने यह असाधारण पत्र दयासिह और धर्मसिह नामक दो विश्वासी सिखो के हाथ बादशाह के पास भेजा। पत्र स्वयं बादशाह के हाथो मे दिया गया। उस समय वह दक्षिण मे अहमदनगर मे था। उसने यह इच्छा प्रगट की कि गुरु उससे मिलने आये। लेकिन इससे पहले कि दोनो मे मुलाकात होती, बादशाह की मृत्यु हो गयी।[1]

---

1 टिप्पणी – औरगजेब ने अपनी मृत्युशैय्या से जो पत्र अपने बेटों को लिखे उनसे जान पड़ता है कि वह अतिम दिनों में, अपने पापों और अत्याचारों के बारे में सोचा करता था। पत्रों में कहा गया था, "मै नही जानता कि मै कौन हू, कहा जाऊगा और मेरे इन पापों का क्या होगा। मेरी जिंदगी नाकाम रही। मेरे दिल में खुदा था लेकिन मेरी अधी आखों ने उसकी रोशनी नही देखी। मेरे लिए अब कोई उम्मीद नही है। जब मुझको अपने लिए ही उम्मीद नही रही तो दूसरों के लिए उम्मीद कैसे करू। मैने बहुत गुनाह किये हैं और पता नही कौन सी सजा मेरा इतजार कर रही है"।

(हिस्ट्री ऑफ इडिया, विन्सेन्ट स्मिथ, ऑक्सफोर्ड 1920, पृष्ठ 448)

सिख इतिहासकारों का दावा यह है कि गुरु गोविन्द सिंह का पत्र पाने के बाद ही औरगजेब का हृदय परिवर्तन हुआ था। गुरु ने अपने पत्र में उसके और उसके प्रतिनिधियों के घोर अत्याचारों का वर्णन ऐसी भाषा में किया जिसे वह समझ सकता था। एक धर्मात्मा से यह सुनकर उसके दिल और दिमाग पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा।

इसी बीच गुरु साहब ने मालवा की यात्रा की । यह समाचार पाकर कि गुरु साहब आसपास के प्रातो मे ही भ्रमण कर रहे है, केंद्रीय पंजाब (माझा) के कुछ ऐसे सिख उनसे मिलने पहुचे, जिनको अपने पथ मे दृढ़ आस्था नही थी । उन्होंने गुरु साहब से बहुत आग्रह किया कि वे युद्ध की प्रवृत्ति को त्यागकर फिर से गुरु नानक के बताये शांति मार्ग को अपना ले ।

उन्होंने गुरु की ओर से मुगल बादशाह के साथ बातचीत करने का आश्वासन भी दिया, जिससे दोनो घरानो की शत्रुता हमेशा के लिए समाप्त हो जाये । लेकिन गुरु ने उनकी बात नही मानी और बोले, "मै एक महान् उद्देश्य के लिए लड़ रहा हू, अपने हित के लिए नही । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने अपने चार बेटो और अपने मां-बाप को बलिदान कर दिया, और अब आप आये है मुझको लड़ाई बद करने की सलाह देने सिर्फ इसलिए कि मै अपनी जान बचा सकू। ऐसा कभी नही हो सकता। जिसे अपमानपूर्ण शाति का जीवन पसद है वह चाहे तो अन्याय और अत्याचार सहता रहे । लेकिन मै जीते जी इसे नही सह सकता, और न वे ही लोग इसे सह सकेगे जो मेरी राह पर चलना चाहते है" । वे लोग निराश होकर अपने घरो को लौट गये, लेकिन जब उन्होंने वहा पहुचकर दूसरे लोगो को गुरु साहब के सकल्प के बारे मे बताया, तो सैकडो लोग माई भागो नामक महिला के नेतृत्व मे गुरु के लिए मर मिटने को तैयार हो गये । उस वीर महिला ने पुरुष वेश धारण किया और लोगो को फिर से कष्ट और बलिदान के मार्ग की ओर प्रवृत्त किया । उनमे से कुछ ऐसे लोग भी थे जो आनन्दपुर मे गुरु को छोडकर लड़ाई के मैदान से भाग आये थे ।

गुरु को यह समाचार मिला कि सरहिन्द के नवाब वजीर खा के नेतृत्व मे बहुत बडी मुगलिया फौज उनका पीछा कर रही है जिसकी सख्या कम से कम दस हजार होगी । यह खबर पाकर वे फिरोजपुर जिले मे स्थित खिदराना की ओर चल पडे । इसी बीच माझा के सिखो की एक बडी सेना ने (जिनकी सख्या लतीफ जैसे कुछ इतिहासकार बारह हजार बताते है, किन्तु सिख इतिहासकारो के अनुसार जिनकी सख्या केवल चालीस के करीब थी) कुछ ही दूर पर एक भारी फौज को गुरु की ओर बढ़ते देखा । उसने शत्रु सेना से टक्कर ली, और प्राणों का मोह छोडकर इस तरह लडे कि सब के सब जिनमे वीरागना माई भागो भी थी, वीरगति को प्राप्त हुए । कहते है कि उन्होने मुगलिया फौजो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपनी चादरो को पेड़ों और झाड़ियो पर इस तरह फैला दिया कि दूर से देखने पर शिविर जैसा लगे । उसे सिख सेना का विशाल शिविर समझ कर मुगल उस पर टूट पड़े । और घमासान युद्ध के बाद एक एक को मौत के घाट उतार दिया । उनको विश्वास था कि मृतको मे गुरु भी होगे । वे पानी की तलाश मे कुछ दूर तक वापस गये, तो गुरु यह देखने के लिए वहा पहुचे कि ऐन मौके पर यह

मदद कहां से आ पहुची थी । उन्होने महासिह नामक एक सिख को वहां सिसकते हुए पाया । उसका सिर अपनी गोद मे लेकर गुरु ने उसका मुह पोछा और सजल नेत्रो से बोले, "बताओ तुम्हारी अतिम इच्छा क्या है ? मै उसे जरूर पूरा करूंगा । तुमने अपने जीवन को इहलोक और परलोक दोनो मे सार्थक किया" । भावावेश से भक्त का गला भर आया । उसने सिसकियां भरते हुए कहा, "अगर हम आपकी दयादृष्टि पा सकते है तो उस त्यागपत्र को, जो हमने आनन्दपुर से भागते समय दिया था, और जिसमें यह लिखा था कि न तो आप हमारे गुरु है और न हम आपके शिष्य, मेरी आंखो के सामने फाड दे । हमने आपके साथ जो गुस्ताखी की थी, उसे अपने खून से धोने की कोशिश की है । अगर आप दया करके हमे फिर अपना ले, और हमे हृदय से आशीर्वाद दे तो हम शांति से प्राण त्याग कर सकेगे" । गुरु ने उसे कोटि कोटि आशीर्वाद दिया और उस पत्र के टुकड़े टुकड़े करते हुए बोले, "उस ईश्वर ने तुम सबको मुक्ति दे दी है जिसकी सेवा में तुमने अपने प्राणो का बलिदान किया है । तुम पर और तुम्हारी राह पर चलने वाले सब लोगो पर ईश्वर की कृपादृष्टि रहेगी" ।

माई भागो मे अभी प्राण बाकी थे । गुरु उपचार के लिए उसे अपने साथ ले गये । सभी मृतक शरीरो को एकत्र करवा कर, यथोचित सम्मान के साथ और विधिपूर्वक उनका दाह सस्कार किया गया ।

इसके पश्चात् गुरु तलवंडी साबो (पुराने पटियाला राज्य) के लिए रवाना हुए, जिसे अब दमदमा साहब (अर्थात गुरु का विश्राम स्थल) भी कहा जाता है । वहा वे काफी समय तक रहे । वही उन्होने आदि-ग्रंथ लिखवाया । वे स्वयं बोलते थे और उनका एक भक्त भाई मणिसिह लिखता जाता था । उसमे उन्होने अपने पिता की 'वाणी' और परंपरा के अनुसार अपना एक पद भी जोड़ दिया । ऐसा करने का कारण यह था कि उस ग्रंथ की मूल प्रति उनके चाचा धीरमल के पास थी और उसने उसे देने से इंकार कर दिया था । सिख लोग उसकी गुरु द्वारा प्रमाणित प्रति चाहते थे । वहा उन्होने स्वय भी कुछ और रचनाए की । उनकी पत्नियां सुन्दरी और साहिब कौर भी वहा उनसे आ मिली । उन्होंने गुरु साहब से अपने नौजवान बेटो के बारे मे पूछा तो अपने अनुयायियो की ओर इशारा करते हुए उन्होने कहा --

इन पुत्रन के शीष पर, वार दिये सुत चार,
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार ।

गुरु साहब ने उस धरती को भी वरदान दिया । उन्होने कहा, "अब यहा मोटे अन्न और झाड़ झंखाड़ के बजाय गेहू और फल पैदा होंगे" । सरकडे की कलमो को चारों दिशाओं मे फेंकते हुए बोले, "एक दिन यह स्थान विद्या का केद्र बनेगा" । आज यह स्थान गुरु की काशी के नाम से प्रसिद्ध है । डा ट्रंप के अनुसार, यहां गुरु ने एक लाख

बीस हजार लोगो को अमृत पान करवा कर 'सिह' बनाया । लगता था कि आनन्दपुर की पुरानी श्री और महिमा फिर लौट आयी ।

गुरु ने अपने पाच शिष्यो के साथ राजपूताना होते हुए दक्षिण जाने का निश्चय किया । भक्तजनों ने वही रहने के लिए उनसे बहुत अनुनय विनय की । गुरु ने कहा, "मेरे आशा के संदेश का प्रसार देश के एक छोर से दूसरे छोर तक होना चाहिए । देश मे आग लगी हो तो मै हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठ सकता हूं" ? लगता था कि गुरु राजपूतो और मराठो से मिलकर मुगलो से आखिरी बार लड़ना चाहते थे ।[1]

---

1. ढाका में सिख सगत के नाम अपने एक पत्र मे गुरु ने बगाल को अपना आध्यात्मिक घर कहा है । इससे जान पड़ता है कि गुरु जो सघर्ष कर रहे थे वह सारे राष्ट्र के लिए था, केवल पजाब के लिए नही । यह भी दिलचस्प बात है कि गुरु नानक से लेकर गुरु गोविन्द सिह तक किसी ने भी अपनी वाणी में पंजाब का नही बल्कि सारे भारत का उल्लेख किया है ।

9

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द ।
मरने ही ते पाइए, पूरन परमानन्द ।

– कबीर

यात्रा के दौरान मे औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला । औरंगजेब का बड़ा शहजादा बहादुरशाह उस समय अफगानिस्तान के युद्ध मे व्यस्त था । उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर औरगजेब के दूसरे बेटे मोहम्मद आजम ने गद्दी पर कब्जा कर लिया । न्याय से गद्दी पर बहादुरशाह का अधिकार था । अपना अधिकार वापस पाने के लिए बहादुरशाह ने जल्दी ही घर की ओर कूच कर दिया । गुरु की वीरता की चर्चा उसने प्राय: सुनी थी । और यह भी सुना था कि आध्यात्मिक प्रकृति के होने के कारण, उनकी शत्रुता केवल व्यवस्था से है, किसी व्यक्ति से नही । उसने गज़नी के अपने एक परिचित सिख कवि नन्दलाल[1] के द्वारा गुरु के पास दरख्वास्त भिजवायी कि वे गद्दी को पाने मे उसकी मदद करे और पुरानी शत्रुता को भुला दें । उसने प्रतिज्ञा की कि गुरु को शाही खानदान से जो भी शिकायतें होगी उनकी जांच करेगा और उनका प्रतिकार करेगा ।[2]

1. जो पहले बादशाह का मीर मुशी रह चुका था ।

2. इतिहासकारों ने बहादुरशाह के चरित्र के बारे में जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट हो जाता है कि उसने गुरु से सहायता की प्रार्थना क्यों की और गुरु ने उसे क्यों स्वीकार किया । औरगजेब के सुन्नी मत के विपरीत, बहादुरशाह शिया था, और अपने चाचा दारा शिकोह की तरह एक उदार सूफी था । गुरु के घराने के साथ दारा शिकोह के सबध भी अच्छे थे, और जब समूगढ़ के युद्ध के बाद दारा शरण मांगने आया – तो सिखों के सातवें गुरु हरिराज ने उसको सहायता ही नही दी, सम्मानपूर्वक चोगा भी प्रदान किया । इस पर औरगजेब बहुत नाराज हुआ और उसने जवाब तलब करने के लिए गुरु को अपने सामने बुलवाया । दारा लाहौर के प्रसिद्ध सूफी हजरत मिया मीर का अनुयायी था, जिसको गुरु अर्जुन ने अमृतसर के जगत प्रसिद्ध स्वर्ण मदिर का शिलान्यास करने के लिए बुलाया था । शिया, सूफी और सिख तीनों ही औरगजेब के अत्याचारों के शिकार थे, इसी कारण उनके आपसी सबध मित्रतापूर्ण थे ।

मोहम्मद लतीफ के अनुसार (ए हिस्ट्री ऑफ पंजाब, कलकत्ता, 1890, पृ स 181-182) बहादुरशाह उदार और दयालु प्रकृति का सौजन्यपूर्ण शहजादा था । उसकी सहिष्णुता और सज्जनता उसके पूर्वाधिकारी औरगजेब की हठधर्मिता और पाखडता के बिल्कुल विपरीत थी । बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तान के साथ जिनको दबाने के लिए उसको भेजा गया था, नर्मी दिखाने और उनके साथ मित्रता करने का आरोप लगाकर बहादुरशाह को औरंगजेब ने सात साल तक कारावास में रखा था । विपत्ति में पलने के कारण वह इतना सदय, सरल और विनीत हो गया था कि लोग उसे सत बादशाह कहने लगे थे ।

यद्यपि गुरु को विश्वास नही था कि विजय हो जाने पर बहादुरशाह अपने वायदो को याद रखेगा, उन्होंने उसके उदार विचारो के बारे मे, जो उसके पिता की हठधर्मिता के बिल्कुल विपरीत था, सुन रखा था । उन्होंने एक बार उसको भी आजमाने का फैसला किया और अपने एक विश्वासपात्र शिष्य धरमसिह को एक ढाई-तीन सौ घुड़सवारो की सैनिक टुकड़ी देकर बहादुरशाह की सहायता के लिए भेज दिया । तीन दिनो तक धौलपुर मे घमासान लड़ाई हुई जिसमे मोहम्मद आजम और उसके कई अफसर मारे गये, और उनकी सेना तितर-बितर हो गयी । बहादुरशाह ने अपने को हिदुस्तान का शहशाह घोषित कर दिया । सिख सेना द्वारा दी गयी मदद के लिए वह बहुत कृतज्ञ था और गुरु से उसकी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उसने धरमसिह को भेजा । उसने यह भी कहलवाया कि वह गुरु से मिलना चाहता है, और उसके लिए वह स्वय आता, अगर इससे उसके कुछ हठधर्मी अनुयायियो को गलतफहमी हो जाने का डर न होता ।

गुरु को निमत्रण मिला तो उनके सिखो ने उन पर बहुत जोर डाला कि वह उसे हरगिज मजूर न करे । उनको डर था कि इसमे कोई गहरी चाल होगी । गुरु की पत्नियो ने भी मना किया । लेकिन गुरु ने कहा, "जीना और मरना तो ईश्वर के हाथ में है । खतरे से बचने की बहुत ज्यादा कोशिश करना भी बेकार है" । उन्होने बहादुरशाह का निमत्रण स्वीकार कर लिया और अपनी एक पत्नी साहिब कौर को लेकर आगरा की ओर चल पड़े जहा बादशाह ने पड़ाव डाल रखा था । (गुरु ने अपनी दूसरी पत्नी सुन्दरी को दिल्ली मे छोड़ दिया । तीसरी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी) आगरा जाने के मार्ग मे गुरु साहब मथुरा और वृदावन मे रुके और वहा लोगो को धर्मोपदेश दिया ।

आगरे मे शहशाह ने उनका बहुत सत्कार किया, बहुमूल्य उपहार दिये, और उनकी नैतिक सहायता के लिए कृतज्ञता प्रगट की और उनसे वहा कुछ दिन ठहरने का अनुरोध

लतीफ आगे लिखते है उसके इतिहासकारों के अनुसार उसके कपड़ों और वस्त्रों के उपहार सचमुच शाही होते थे, लेकिन वह स्वय सतों की तरह बहुत सादे कपड़े पहनता था । लाहौर में उसने शिया मत के अनुसार खुतबा चलाने का प्रयत्न किया था, लेकिन सुन्नियों द्वारा विरोध होने पर, उसने उस विचार को त्याग दिया । इससे उसके उदार दृष्टिकोण का पता चलता है । विद्वानों की सगति उसे प्रिय थी — धर्म और कानून पर वाद विवाद में उसको आनन्द आता था । पजाब में वह बहुत लोकप्रिय था । लाहौर में एक फाटक शाह आलमी का नाम, उसी पर रखा गया है ।

तारीखे बहादुरशाह में इस प्रसग के बारे में लिखा है, "जब शहशाह की फौज बुरहानपुर की ओर बढ़ रही थी, तो नानक के एक उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह उन इलाकों में भ्रमण कर रहे थे । वे शाही खेमे के साथ हो लिए । वे हमेशा धार्मिक विचार वाले, सासारिक और सब तरह के लोगों की सभाओं में भाषण दिया करते थे" । (हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाइ हिस्टोरियस, में उद्धृत अश_भाग - 7, पृ. स 566) औरगजेब के समकालीन काफी खा ने, जो गुरु का मित्र नही था, अपने "मुन्तखतुल लुबाव" मे इस बात की ताइत की है कि दक्खन की चढ़ाई के समय गुरु (कुछ समय के लिए) 200 सवारों के साथ शहशाह के साथी बन गये ।

किया। गुरु ने सहर्ष निमत्रण स्वीकार कर लिया। उन्होने सोचा कि बादशाह को मुगल शासन के उपजीवियो, विशेषकर सरहिद के नवाब द्वारा हिंदू-सिख जनता पर किये जाने वाले अत्याचारो के बारे मे बताने का अच्छा मौका मिलेगा।

गुरु और बादशाह का यह मेल उनके कई दरबारियो को खटकने लगा, और कुछ लोगो ने गुरु को परेशान करना चाहा। एक दिन जब दरबारियो की उपस्थिति मे गुरु बादशाह से बातचीत कर रहे थे, उनमें से एक, जो सरहिद का एक विद्वान सैयद कहा जाता है, विनयपूर्वक बोला, "गुरु साहब, हमने नानक के घराने की महानता के बारे मे बहुत कुछ सुना है। आप उनके दसवे उत्तराधिकारी है। हम तो उन्ही को अलौकिक पुरुष मानते हैं जो कुछ चमत्कार कर सके। अगर इस बारे मे आप हमारी शंका मिटा दे तो हमें बहुत खुशी होगी"।

प्रत्यक्ष रूप से अबोध लगने वाली इस प्रार्थना के पीछे जो चालाकी थी उसे गुरु ने तुरंत भाप लिया। प्रश्नकर्ता की भूल सिद्ध करने के लिए उन्होने उत्तर दिया "बादशाह स्वय चमत्कार कर सकते है। नीच से नीच को ऊचा उठा सकते है, और जो ऊचे और ताकतवर है उन्हे बिल्कुल मिटा सकते है"। लेकिन दरबारी आग्रह करता गया, ''आप जो कहते है वह सच है। लेकिन हम तो यह जानना चाहते है कि क्या आप भी कोई चमत्कार कर सकते है"?

तब गुरु ने सोने की एक मोहर निकाल कर कहा, "देखो यह भी एक चमत्कार है। संसार की हर वस्तु को, हर व्यक्ति को खरीद सकती है यह"।

दरबारी ने कहा, "हा हां, महाराज सो तो है। लेकिन आप खुद कौन कौन सा चमत्कार कर सकते हैं? इससे हमारी सब शंकाए मिट जायेगी"। तब गुरु अपनी चमचमाती दोधारी तलवार को खीचकर, गरजकर बोले, "एक ही चमत्कार है जो मै दिखा सकता हू। मुझको जो ललकारता है उसकी गर्दन को इससे उड़ा सकता हू। मनुष्य या राष्ट्र का बस यही भाग्य निर्माता है"। प्रश्न पूछने वाला सहम गया। बादशाह बडे ध्यान से उनकी बाते सुन रहा थ.। उसने प्रश्न पूछने वाले दरबारी को फटकारा और गुरु से बोले, "महाराज, मेरे दरबारी की इस गुस्ताखी से आप रज न हो"। जिस किसी ने इस घटना के बारे मे सुना वह इस मुल्क के शहशाह के सामने गुरु के साहस पर दग रह गया। तलवार की म्यान खीचना तो दूर उसे शहंशाह के सामने ले आने का साहस भी कोई नही कर सकता था।

एक दिन बादशाह ने गुरु से कहा, "हमारे धर्म से अच्छा धर्म और कोई नही है। फिर नर्क से छुटकारा चाहने वाले सब लोग इस धर्म को क्यों नही स्वीकार कर लेते"? उत्तर मे गुरु ने कहा, "बादशाह सलामत, मोहर का मूल्य ऊपर छपी हुई तस्वीर के कारण नही बल्कि जो उसके अंदर है, उसके कारण है। नकली सिक्के पर भी तो शाही मुहर छपी

होती है, लेकिन यह बाजार मे नही चलता । उसे कोई नही लेना चाहता । ठीक यही बात धर्म पर लागू है । ईश्वर यह नही देखता कि हृदय के ऊपर किसकी छाप लगी है । वह तो हृदय के अदर देखता है, और उसी के अनुसार यह फैसला करता है कि कौन स्वर्ग जायेगा और कौन नर्क । मै एक ही ईश्वर को मानता हू, दो या तीन को नही, और काफिर उसको मानता हू जो ईश्वर के अस्तित्व मे ही विश्वास नही करता" ।

एक दिन गुरु ने बादशाह के आगे अपनी उस इच्छा को व्यक्त किया जिसे वे बहुत दिनो से अपने दिल मे सजोये हुए थे । वे चाहते थे कि सरहिंद के नवाब वजीर खा को उनके हवाले कर दिया जाये ताकि वे उसके साथ जैसा भी व्यवहार चाहे, कर सके । बादशाह ने कुछ टालमटोल अवश्य की, लेकिन साफ साफ इंकार नही कर सका । उसने कहा कि अपने सलाहकारो से बातचीत करने के बाद अपने निर्णय की सूचना देगा । उसने यह आशका भी प्रगट की कि अगर उसने सरहिद के नवाब को गुरु के हवाले कर दिया तो, हो सकता है उसकी सेना विद्रोह कर उठे । उसने आग्रह किया कि गुरु एक साल और प्रतीक्षा करे, जिससे कि वह अपने साम्राज्य को सुव्यवस्थित कर ले । साथ ही उसने गुरु को अपने साथ जयपुर और मालवा का दौरा करने के लिए भी आमत्रित किया । गुरु बादशाह की टाल मटोल से अप्रसन्न तो हुए लेकिन वे उससे एकबारगी सबध विच्छेद नही करना चाहते थे । इसी विचार से उन्होने बादशाह के निमत्रण को स्वीकार कर लिया । उन्होंने सोचा कि अवसर देखकर वे अपनी माग को फिर दोहरायेगे जो न्यायसगत था और कुरान के उसूलो के अनुसार था — खून के बदले खून ।

आगरा मे रहते हुए गुरु ने कुछ दिन और अवसर की प्रतीक्षा की । वहा प्रतिदिन सुबह और शाम की सभा मे उनका प्रवचन होता था । इसी बीच बादशाह ने जयपुर के लिए कूच किया ।[1] गुरु, अपने अनुयायियो के साथ कुछ दिनो के बाद उनसे जा कर मिले । जोधपुर और चित्तौड़ का दौरा दोनो ने साथ साथ किया । वहा राजपूत राजाओ ने गुरु का बहुत स्वागत सम्मान किया । उसके बाद गुरु बादशाह के साथ दक्षिण की ओर चले । बुरहानपुर पहुचकर उन्होने देखा कि एक भक्त सिख ने उनके लिए एक विश्रामगृह तैयार कर रखा है । वहा ठहरकर गुरु ने उसे कृतार्थ किया । परंतु बादशाह वहा से रवाना होने लगे, और गुरु से भी साथ चलने का आग्रह किया । गुरु ने उनका अनुरोध स्वीकार किया और दोनो दक्षिण की ओर रवाना हुए । यह सन् 1907 के अतिम दिनो की बात है । उस समय गुरु के साथ कुछ पैदल और लगभग दो-तीन सौ घुड़सवार भी थे जो भाले बर्छियो से लैस थे ।[2]

---

1 जान पड़ता है कि यहा गुरु ने बादशाह का साथ छोड़ दिया था । दौलतराम की पुस्तक, "गुरु गोविन्द सिह की जीवनी" के अनुसार बादशाह की इच्छा थी कि मराठों के विरुद्ध लड़ने मे गुरु उनका साथ दें । गुरु ने अस्वीकार कर दिया और उनको छोड़कर चले आये ।

2 इसी बीच गुरु ने बादशाह से सबध विच्छेद कर लिया था और अकेले ही दक्षिण की ओर चल पड़े थे ।

नान्देड़ पहुंचते ही गुरु साहब माधोदास नामक एक बैरागी के घर गये। गुरु को मालूम हुआ था कि बैरागी चमत्कारी और जादू जानने वाला है। उसमे ऐसी जादुई शक्ति भी थी कि जो कोई उसके पलंग पर जाने अनजाने बैठ जाता वह तुरत दूर जा गिरता। गुरु उसके झोंपडे के अदर गये और उसके पलग पर लेट गये। बैरागी माधोदास उस समय वहा नही था। कुछ देर बाद लौटा तो यह देखकर चकित रह गया कि कोई अजनबी उसके पलंग पर मजे से लेटा है और उसका कुछ भी नही बिगड़ा। उसके एक शिष्य ने रास्ते में यह भी बताया था कि गुरु ने उसके बकरे को मारकर, उसका मास पकाकर खा लिया है। वहा की मर्यादा तोड़ने की इस धृष्टता को वह सहन नही कर सका, और उसने गुरु से जवाब तलब किया। गुरु ने कहा कि एक साधु का निवास स्थान जानकर वे यहां आये थे, और बहुत थके होने के कारण, बिना अनुमति के पलग पर बैठ गये, और जो कुछ वहा मिला उससे अपनी भूख मिटायी। उन्होने यह भी कहा कि वे उसे वैराग्य से मुक्ति दिलाने आये है। जब माधोदास ने गुरु की तेजस्वी आखों, उनके स्वरूप और निर्भीक व्यवहार को देखा तो उसको लगा कि उनमे अवश्य कोई असाधारण बात है। उसने उनका परिचय पूछा, और जब उसे मालूम हुआ कि आगतुक और कोई नही स्वय गुरु गोविन्द सिह है, तब तो वह उनके चरणो मे गिर पड़ा और गद्गद् होकर बोला, "स्वामी, मै आपका बदा हूं। आप जो भी आदेश देंगे मै उसका पालन करूगा। आप ही हमारी जाति के रक्षक है"।

गुरु उसकी भक्ति से बहुत प्रभावित हुए। उनके पूछने पर वैरागी ने अपनी सारी आप-बीती कह सुनाई। वह राजौरी (कश्मीर) के पास पुछ मे (1670 ई) पैदा हुआ था। कुछ समय तक तो वह खेती-बाड़ी करता रहा। तीरदाजी का भी अभ्यास किया। शिकार खेलने के लिए वह जगलो मे जाया करता था। एक दिन उसने एक हिरणी का शिकार किया। जब उसने देखा कि हिरणी के गर्भ मे दो बच्चे थे, तो उसको घोर पश्चाताप हुआ। जीव हत्या से उसको इतनी ग्लानि हुई कि उसने ससार को त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया, और बाद में नान्देड़ मे गोदावरी के किनारे तप करने लगा। वही उसने योग और कुछ जादू भी सीखा। गुरु को उसका भावुक स्वभाव अच्छा लगा। उन्होने उसको स्मरण दिलाया कि जब ससार मे अत्याचार का बोलबाला हो तो उसके जैसे लोगो का कर्तव्य है कि उसके विनाश के लिए सघर्ष करे, और आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणो की आहुति देने से भी न हिचके।

माधोदास अपने को गुरु का बंदा कह चुका था। उसने अपने आप को उनकी सेवा मे समर्पित कर दिया। गुरु ने उसको अमृतपान कराया और उसका नाम गुरबख्शसिह रखा। (यद्यपि उसका प्रचलित नाम बदासिह बहादुर था) गुरु ने उसे काम को त्यागने, युद्ध से कभी मुंह न मोड़ने, विजयी होने पर भी विनम्र बने रहने, और अपना अलग पथ

न चलाने का आदेश दिया । अपने साथी सैनिको और सिख अनुचरो के साथ बराबरी का व्यवहार करने और, जैसा कि खालसा बिरादरी का सिद्धांत है, हर अवसर पर उनकी सलाह लेने की हिदायत खास तौर से की ।

गुरु ने उसको आशीर्वाद दिया कि जब तक वह उनके आदेश में निहित सिद्धांतो का पालन करेगा, यानी हृदय मे परमेश्वर का ध्यान रखकर दुष्टो का दमन और गरीब, शोषित और दलित लोगों के उत्थान का प्रयत्न करता रहेगा, तब तक उनका साया हमेशा उसके सिर पर रहेगा । बदा ने गुरु का चरण स्पर्श किया, और उनके आदेशो का अक्षरश. पालन करने और उनके बताये मार्ग से कभी न भटकने का वचन दिया ।

तब गुरु ने उसको तीन अन्य सिखो[1] विनोदसिह, कानसिह और बाजसिह के साथ पजाब जाने का आदेश दिया । उन्होने अपने तरकस से तीन तीर निकालकर उसको आशीर्वाद के रूप मे दिये और विस्तार से अपनी योजना समझायी । गुरु ने उससे कहा कि बूड़िया (अम्बाला मे) के निकट एक स्थान पर अन्य लोगो की प्रतीक्षा करे, जिन्हे वहा उससे मिलने का आदेश दिया गया था । वहा सैनिक तैयारिया पूरी करने के बाद उन्हें सढौरा पर हमला करना था, जहा उनके अनन्य मुसलमान भक्त पीर बुधुशाह रहते थे जिनकी भगानी मे गुरु की सहायता करने के अपराध में उनके कई अनुयायियो के साथ हत्या कर दी गयी थी ।

सढौरे के आक्रमण के बाद सरहिद पर हमला करके उस पर कब्जा करने और उसके नवाब वजीर खा को, जिसके सिर की माग उन्होने बादशाह से की थी, और उसकी आनाकानी से निराश हो गये थे, बदी बनाने की योजना थी । फिर पंजाब के उन पहाड़ी राजाओ से बदला लेना था जिन्होने अकारण गुरु से दुश्मनी मोल ली थी, तथा अत्याचारी मुगल शासन से साठ गाठ करके उन पर अनेको बार आक्रमण किया था । सिखो के नाम गुरु का पत्र लेकर बदा तुरत नान्देड़ से पजाब की ओर चल पड़ा ।[2]

गुरु कुछ और समय तक वहा ठहरे । गोदावरी के तट पर, एकांत स्थल पर उन्होने अपना डेरा जमाया । वही पर वे समाधिस्थ हुआ करते थे । वहां भी सिख लोग उनके दर्शनार्थ दूर दूर से आने लगे । एक बार एक सिख ने उन्हे हीरे की एक बहुमूल्य अंगूठी भेट की । गुरु नदी किनारे समाधि लगाये बैठे थे । उन्होने अगूठी को नदी मे फेंक दिया तो सिख को बहुत दुख हुआ । उसने गुरु से पूछा कि उन्होंने बहुमूल्य अंगूठी किस तरह फेंकी थी । वह उसे पानी मे से खोज निकालना चाहता था । उसके प्रश्न पर गुरु मुस्करा दिये और अपनी कीमती अंगूठी उतार कर उसी दिशा मे फेंकते हुए बोले, "वही फेंकी

---

1. टिप्पणी – डॉ गोकलचद नारंग ने उनकी सख्या 25 बतायी है ।

2. इस तथ्य से तथा धौल की सगत के नाम लिखे पत्र (2 अक्तूबर, 1707) से पता चलता है कि गुरु को आशा थी कि वे शीघ्र पजाब लौट कर मुगल हुकूमत के खिलाफ क्रांति करेंगे ।

थी"। कहते हैं कि उस अगूठी को शहशाह ने गुरु को नान्देड़ मे भेट किया था। सांसारिक धन वैभव के प्रति गुरु की विरक्ति देखकर एकत्रित जनसमूह आश्चर्यचकित रह गया।

उनके साथ कुछ समय बाद गुरु ने अपनी पत्नी साहिब कौर को, जो उनके साथ दक्षिण गयी थी, दिल्ली वापस भेज दिया जहां उनकी दूसरी पत्नी सुन्दरी भी थी। साहिब कौर किसी भी तरह उनसे अलग नही होना चाहती थी, क्योकि उनका व्रत था कि गुरु के दर्शन किये बगैर भोजन नही ग्रहण करेंगी। लेकिन गुरु ने उन्हें समझा बुझाकर विदा कर दिया। विदा के समय छः प्रकार के शस्त्र उन्हे सौपते हुए गुरु ने कहा, "जब कभी मुझको देखने की इच्छा हो तो इन शस्त्रो मे मुझको देख लिया करो"। भाई मणिसिह को, जो बड़े धर्मनिष्ठ थे तथा गुरु के कट्टर अनुयायी थे, साहिब कौर के साथ उनकी सेवा के लिए भेजा गया।

कुछ ही दिनो बाद एक रात को जब गुरु बिस्तर पर सोने जा रहे थे, उनके शिविर मे गुल खा नामक एक पठान घुसा। इधर कुछ दिनो से वह गुरु से मिलने अक्सर आया करता था। अपने को वह गुरु का भक्त बताता था। इसी कारण उस पर किसी ने सदेह नही किया और न उसे अदर जाने से रोका। गुरु ने उसको प्रसाद दिया जो वह नीच तुरंत चट कर गया। उसको नमस्कार करके गुरु ज्यों ही अपने बिस्तर पर लेटने लगे, उस पठान ने उस पावन शरीर मे दो बार खजर भोक दिया। क्रोधित सिह की तरह गुरु अपने बिस्तर से कूद पड़े, बिजली की गति से अपनी तलवार खीची और भागते हुए कातिल का सिर धड़ से अलग कर दिया। सभी उपलब्ध प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि हत्यारा सरहिद के नवाब वजीर खां का भेजा हुआ था। वजीर खा बहुत डरा हुआ था क्योकि वह जानता था कि गुरु ने उससे बदला लेने का संकल्प किया है। हत्यारे को यह हुक्म दिया गया था कि वह एक ही वार मे गुरु के प्राण ले ले।

तुरंत ही गुरु के घावो पर टांके लगाये गये। चौथे दिन गुरु दरबार मे उपस्थित हुए तो लोगो ने यही समझा कि उनकी हालत सुधर रही है, और गुरु जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे। परतु उसी रात को, अगड़ाई लेते समय, घाव के टाके खुल गये और उन्हे अपार पीड़ा हुई। गुरु ने जान लिया कि अंतिम समय आ पहुंचा है। दर्द की अवहेलना कर वे उठ बैठे और अपने कुछ अनुयायियों को बुलवा भेजा जो फौरन हाजिर हो गये। गुरु ध्यानमग्न थे। सिखों को किसी अनिष्ट की आशंका हुई। गुरु का मुखमडल सदा की भांति निर्मल और शांत था। उनके चेहरे पर मरणासन्न होने के कोई लक्षण नहीं थे। उस क्षण वे बिलकुल संयत और अपने मे लीन लग रहे थे। संध्याकालीन कमल की पंखुड़ियों के समान उनकी पलके मुंदने लगी। प्रार्थना हो चुकी तो कुछ भक्तों ने रुधे हुए स्वर मे अपनी आशंका प्रगट की लेकिन गुरु उसी धीर गंभीर स्वर मे बोले, "मनुष्य को सबसे ज्यादा मृत्यु से भय लगता है। मैं तो सदा मौत के नजदीक रहा हूं, उसको

सम्मुख से देखा है। मेरा अनुसरण जो करना चाहते हैं उन्हे भी सदा मृत्यु के साये में रहना होगा। मै तो उसी तरह मौत के पास जाऊगा जैसे बारात मे दूल्हा घोड़े पर सवार होकर जाता है। मेरे लिए शोक मत करना। जहां कही भी आप लोगो मे से पाच ईश्वर भक्त मौजूद होंगे, वही मै रहूंगा"। जब उनसे पूछा गया कि उनके बाद नानक की गद्दी का अधिकारी कौन होगा तो वे बोले — "शब्द—जो ग्रथ साहब मे मिलता है। जो कोई मुझको उसमे ढूंढेगा उसमें मिलूंगा। आज से ग्रथ साहब को ही गुरुओं का पार्थिव रूप समझना। मैं धरती पर आया था ईश्वर की सत्ता स्थापित करने, अब आप लोगो को उसी के हवाले किये जाता हूं। जब तक आप अपने पथ पर चलेगे वह आपका पथ प्रदर्शक, गुरु और शरण देने वाला होगा"।

गुरु ने चुपचाप शांत भाव से, साफ और सुदर वस्त्र धारण किये। फिर खड़े होकर अंतिम प्रार्थना की, ग्रथ साहब की चार बार प्रदक्षिणा की, और नारियल तथा पाच पैसे उस पर चढ़ाये, जैसा कि नये गुरु के अभिषेक के अवसर पर किया जाता था। उन्होंने उसको प्रणाम किया, और इस प्रकार औपचारिक रूप से उसको अपनी गद्दी पर आसीन कराया। गुरु ने कमरबद पहना जैसा कि युद्ध पर जाते समय पहनते थे, कंधे पर धनुष रखा, और दाये हाथ मे बंदूक लेकर, अपने चारों ओर खड़े लोगो से अंतिम विदा लेते हुए बोले, "वाहे गुरुजी का खालसा, श्री वाहे गुरु जी की फतह"।

फिर उन्होने अपना घोड़ा मंगवाया, जो तुरत हाजिर किया गया। गुरु ने उसे सहलाया, प्यार से थपथपाया, और उसके साथ अपनी अंतिम यात्रा पर जाने के लिए उस पर सवार हुए और दीवार से घिरे हुए उस तम्बू की ओर बढ़े जिसमें उन्होने अपनी चिता चिनवायी थी। सिखो से चिता तक साथ आने को मना कर दिया, और भाई सतोषसिह को छोड़कर बाकी सबको, वापस भेज दिया।

वह अपने घोड़े से उतरे, जो तम्बू के बाहर आसू भरी आखो से मूक खड़ा रहा। उसकी लगाम शोकविह्वल सिख के हाथो मे थी। बाकी सिख तम्बू के बाहर बैठे पाठ कर रहे थे। रात का एक पहर बाकी था जब गुरु ने चिता मे समाधि ली।[1] चिता में प्रवेश करने के पहले उन्होने उस अनुचर से, जो उस समय वहां उपस्थित था, सिखो को अपना अंतिम आदेश कहला भेजा कि उनके स्मारक के रूप मे उनका कोई मदिर न बनवाया जाये। जो ऐसा करेगा उसका सर्वनाश हो जायेगा। गुरु की विनम्रता यह चाहती थी कि उसका नाम मिटा दिया जाये। वह चाहते थे कि उनके जीवन का अनुसरण तो किया जाय, लेकिन उनकी पूजा न की जाय। लेकिन सिखों ने बाद में उनकी अस्थियों का

---

1. टिप्पणी — नयी खोजों के अनुसार गुरु ने 7 अक्तूबर 1708, को ब्रह्म मुहूर्त में शरीर छोड़ा और प्रात.काल उनके शिष्यों ने उनका दाह सस्कार किया। (देखिए: गुरु के दरबार के कवि सेनापति द्वारा रचित 'गुरु शोभा' और डाक्टर गेंदासिंह द्वारा लिखित 'गुरु गोविन्द सिंह के अतिम दिन') कई धार्मिक सिखों का विश्वास है कि गुरु घोड़े पर बैठे बैठे ही, सशरीर स्वर्ग को प्रस्थान कर गये थे।

सग्रह करके उस पर एक मच बनवा दिया। जिस खालसा को उन्होंने सांसारिक कामो के लिए अपना उत्तराधिकारी चुना था उसने यही निर्णय किया कि गुरु गोविन्द जैसे महापुरुष का स्मारक होना ही चाहिए। यह थी सच्ची लोकतांत्रिक पद्धति।

इस प्रकार बयालीस साल की अल्प अवस्था मे ही मानवजाति के इतिहास के एक अद्भुत चरित्र की जीवन लीला समाप्त हो गयी। नौ वर्ष की कोमल आयु मे, पितृहीन, शक्तिशाली और ईर्ष्यालु सबधियो, पहाडी राजाओ और पराक्रमी मुगल हुकूमत जैसे शत्रुओ और उनके षडयंत्रों से घिरे होने पर भी, उन्होने केवल अपने अनुयायियों को सासारिक और आध्यात्मिक जीवन का भार ही नही सभाला, बल्कि इस उपमहाद्वीप मे मानव की स्वतंत्रता, व्यक्ति की गरिमा और अपने जीवन का मार्ग चुनने की स्वाधीनता स्थापित करने का बीड़ा उठाया। उन्होने लोगो को लौकिक आशा और आध्यात्मिक शक्ति दी। साधारण मिट्टी से उन्होने फौलादी स्त्री और पुरुष गढ़े। उनकी मृत्यु के केवल तीन वर्ष के बाद ही, बदा के नेतृत्व मे, मध्य तथा दक्षिण पूर्व पजाब मे सिख एक बहुत बड़े भूखड के स्वामी बन बैठे।

यही नही, वे दिल्ली को भी धमकी दे रहे थे। तीस वर्ष बाद वे सतलुज के इस पार भयानक सघर्षों के बाद, कई स्वाधीन रियासतो के मालिक बन बैठे। उनकी वीरता और त्याग की मिसाल मानव जाति के इतिहास मे शायद ही मिले।

सिखो मे उच्च आदर्श के लिए मर मिटने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो चुकी थी कि कठिन से कठिन परिस्थितिया भी उन्हे विचलित नही कर सकती थी। शत्रु ने उनमें से एक एक के सिर के लिए इनाम की घोषणा कर रखी थी। बस्ती छोडकर उन्हे निर्जन वनो मे भटकना पड़ता था, लेकिन पराजय शब्द को उन्होने कभी अपनी जुबान पर भी नही आने दिया।

गुरु की शताब्दी के पूरी होते न होते उन्होने सारे पजाब पर आधिपत्य जमा लिया था। उसके बाद कश्मीर, लद्दाख और खैबरपास तक पठान भूमि पर भी अधिकार कर लिया था। भारत के हजार वर्ष के इतिहास मे पहली बार, आक्रमण की लहर पश्चिम की ओर मुड़ी। चमत्कार के सिवा उसको और क्या कहा जा सकता है ?

गुरु काव्य रचना मे भी बेजोड़ थे। उनकी कल्पनाशक्ति अद्भुत थी। गुरु ने जो बिरादरी बनायी वह केवल योद्धाओ की नही, ऐसे शूरवीरो की थी जो रणभूमि मे भी ईश्वर का ध्यान रखते थे, जिसकी विजय धर्म की विजय थी, अपनी शान या स्वार्थ की नही। दूसरे शब्दों में, गुरु गोविन्द सिंह के अनुसार, किसी देश की नीति उसकी शक्ति नही बल्कि नैतिकता के आधार पर बननी चाहिए। राष्ट्र सारी जनता को मिलाकर ही बन सकता है, जाति-पांति, धर्म आदि के भेदभावों के कारण विच्छिन्न समुदायो से नही। जिस लोकतंत्रात्मक भावना को उन्होने खालसाओं मे जगाया, जिसके अनुसार सब से

उच्च और सबसे नीच समकक्ष थे, और जिससे प्रेरित होकर एक छोटे लेकिन सुसंगठित दल ने सारे राष्ट्र के लिए काम किया और सघर्ष किया, उससे प्रभावित होकर आर्नल्ड टायनबी ने लिखा था कि लेनिन ने जो किया उसे गुरु ने दो सौ वर्ष पहले ही कर दिखाया था। यह जानकर कि गद्दी का कितना अनुचित लाभ उठाया जा सकता है, उन्होंने उत्तराधिकार की परपरा को खत्म कर दिया था।[1] उन्होंने तो यहां तक कहा था कि उनको भगवान समझने वाले नर्क भोगेंगे। सांसारिक मामलों में सारे खालसाओ को उनके एकमत से स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार काम करने का आदेश है। उसे गुरुमता कहते हैं, और वह हर एक के लिए मान्य होता है।

यद्यपि गुरु गोविन्द सिंह को मुगलों तथा कई अदूरदर्शी हिंदुओं के साथ निरंतर युद्ध करना पड़ा फिर भी उन्होंने अनुयायियो से सदा यही कहा कि दूसरे धर्मों का आदर करना चाहिए। उन्होंने कहा था—

मानस की जाति सबै एक पहचानबो

पहली बार हमारी जाति को "सपूर्ण मानव" बनने का उपदेश मिला। गुरु का कहना था कि एक ही मनुष्य मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के कामों को करने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसे मनुष्य को ही उन्होंने संपूर्ण मनुष्य की संज्ञा दी थी। जन सेवा तथा सबके लिए एक ही लगर (रसोई) को उन्होने सिख धर्म का अनिवार्य अंग बना दिया था। आध्यात्मिक जीवन के लिए वे किसी विशेष प्रकार की वेशभूषा या भोजन को आवश्यक नही मानते थे। यों तो सिखो को किसी भी वेश के लिए मनाही नही थी, परतु उन्हे इस बात का निर्देश था कि वे हर एक काम को ईश्वर का आदेश मानकर, पूर्ण समर्पण की भावना से करें। गुरु साहब का कहना था कि खालसा ईश्वर का है, और जीत भी हर क्षेत्र मे ईश्वर की ही होती है। जो कमाता है और बांट कर नही खाता, जो जीवन को केवल भोग के लिए ही समझता है और किसी प्रकार का त्याग नही करता, और जीवन की क्षणभंगुर चमक दमक के पीछे दौड़ता है जो अगम अगोचर, सर्वशक्तिमान ब्रह्म की सेवा मे जीवन अर्पण नही करता, वह गुरु का भक्त कहलाने का दावा नही कर सकता। उनका उपदेश था—

मेरा मुझमें कुछ नही, जो है सो तेरा।
तेरा तुझको सौप दू, क्या लागे मेरा?

---

1. टिप्पणी – ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री (ऑक्सफोर्ड, एब्रिजमेन्ट, 1960, पृष्ठ 745)

10

उपसंहार

यह उचित ही होगा कि इस कहानी को समाप्त करने से पहले गुरु गोविन्द सिह के जीवन से सबधित उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम यह देखे कि मानव इतिहास मे उनका क्या स्थान है । गुरु गोविन्द सिह पर यह आरोप लगाया गया है कि वे सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक के बताये शातिपथ से विचलित हो गये थे । दूसरी ओर यह भी कहा गया है कि जिस अत्याचारपूर्ण शासन के विरुद्ध उन्होने विद्रोह का झडा खड़ा किया था उसको उखाड़ फेंकने मे उन्हे विशेष सफलता नही मिली । भारतीयो के मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए उन्होने खालसाओ के जिस सामाजिक, राजनैतिक समुदाय की स्थापना की, उसे हिदुओ से भी उतना ही पृथक किया गया जितना मुसलमानो से । दलील यह दी जाती है कि नानक का मूल उद्देश्य एक नये और पृथक पथ की स्थापना करना नही, बल्कि दोनो सप्रदायो के आतरिक और आध्यात्मिक जीवन मे एकता स्थापित करना था । मुगलो के विरुद्ध उनके सघर्ष का मूल कारण भी एक गैर धर्म के प्रति उनकी घृणा बताया जाता है । हिदुओ के कुछ रूढ़ि विश्वासो को वे नही मानते थे । इसके बारे मे यह कहा गया है कि यह उनका पूर्वजो के धर्म के प्रति, गुरु नानक की अपेक्षा, अधिक प्रचड विद्रोह था । गोविन्द सिह जैसे विलक्षण और परम ज्ञानी महापुरुष के बारे मे की जाने वाली ऐसी आलोचना विकृत विचारो का ही परिचय देती है । सिखो के इतिहासकार कनिघम ने ठीक ही लिखा है, जो यह समझते है कि उनकी सारी आकाक्षाओ को उनकी मृत्यु ने झुठला दिया उन्हे यह याद रखना चाहिए कि जिस समय मोहम्मद मक्का से पलायन कर रहे थे उस समय इसकी बिल्कुल सभावना थी कि किसी अरब की कटार उसका काम तमाम करके दुनिया का इतिहास बदल देती । महाकाव्य इनियड के नायक एचिलिस को भी, जो सत्य की प्रतिमूर्ति था, ट्राय को जीते बिना ही लौटना पड़ा ।

मरमिडोन्स के स्वामी को, जिसको अल्प आयु और असीम यश बदा था, सिमोइस और स्केमेडर में, जैसा उसको डर था, बहुत अगौरवपूर्ण मृत्यु पाप्त हुई । रिचर्ड को, जिसका नाम सारे पूर्व और पश्चिम मे प्रसिद्ध है, केवल एक ही धुन थी — येरुसेलम को मुसलमानो के कब्जे से छुड़ाने की । उसको शर्म और दुख से अपना मुह छिपाना पड़ा यह सोचकर कि उस पवित्र नगर को उन अभक्तों के हाथ मे ही छोड़ना पड़ा । तो,

सफलता ही हमेशा महानता का मानदड नही होती। सिखो के अतिम गुरु अपने लक्ष्य की पूर्ति देखने के लिए जीवित नही रहे, लेकिन उन्होने एक पराभूत राष्ट्र की सोयी हुई शक्ति को अवश्य जगा दिया, और उनमे सामाजिक स्वाधीनता और राष्ट्रीय सत्ता की प्रबल आकाक्षा भर दी। नानक ने जिस शुद्ध उपासना का उपदेश दिया था, सामाजिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय चेतना उसके अभिन्न अंग है।

गुरु गोविन्द ने जीवन की उन चिनगारियो को पहचाना जो अब भी बाकी थी, और उन्हे प्रचड अग्नि के रूप मे प्रज्जवलित कर दिया। सपूर्ण सिख समुदाय मानों उनकी आत्मा के प्रभाव से अभिभूत है। उन्होंने सिखों का मानसिक रूप से ही उत्थान नही कराया, बल्कि उनका कायाकल्प कर, उन्हे ऊंचा डीलडौल और रौबीला व्यक्तित्व दिया। सिखो के सुधरे हुए बाह्य रूप मे ऐसा अंतर आ गया कि एक सिख राजा अपने राजसी व्यक्तित्व और पौरुषपूर्ण चाल-ढाल के कारण जितना विशिष्ट और रौबीला लगता है उतना ही एक धर्मगुरु भी जिसके विचारो की उदारता और महानता उसे परमात्मा के निकट पहुचा देती है।

और अंत मे वे लिखते हैं, "यूनान और रोम के विद्वानो ने उन बेचारों की भावना को गलत समझा जिन्होने ईसाई मत ग्रहण करके एक नया जीवन पाया था। टेटीसस और सोयेट्रोनियस ने तो ईसाई मत को यहूदी धर्म की ही एक उपशाखा माना था। मूल अंतर को वे कभी नही जान सके। वे उसकी आतरिक शक्ति और उस सिद्धात की महानता नही समझ सके जिसने आधुनिक सभ्यता को गरिमा और पवित्रता प्रदान की है"।

पूंजीवाद के विरुद्ध विद्रोह करने वाले कार्लमार्क्स को भी एक असफल आदर्शवादी कहा गया था। उसके बारे मे तो कहा गया है कि वह वास्तव मे अपनी व्यक्तिगत कुण्ठाओ का बदला समाज से लेना चाहता था। परंतु कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपने होशहवास मे रहते, मार्क्स के सिद्धांतो द्वारा सारे मानव समाज मे हुए मूलभूत और गहरे परिवर्तनो के महत्व को अस्वीकार करे। चाहे कोई उसके पक्ष में हो या विपक्ष मे, यह मानना ही होगा कि मार्क्स के बाद दुनिया वह नही रही जो उसके पहले थी। लेकिन पिछली शताब्दी मे, हर एक व्यक्ति से यही अपेक्षा की जाती थी कि वह या तो मार्क्स का समर्थन करे या खंडन।

और क्या वह एक बढ़ई का लावारिस बेटा मात्र था जो युवावस्था मे सूली पर चढ़ा दिया गया था, और जिसने दिव्यता प्राप्त की थी? वह केवल एक व्यक्ति नही था, वह था एक बिल्कुल नयी सभ्यता का जन्म जो आने वाली शताब्दियो मे मानव इतिहास का मार्ग बदल देने वाली थी।

इस नयी सभ्यता की प्रसवपीड़ा को ही लोग एक सताए हुए व्यक्ति का आर्त्तनाद समझ बैठे। और जब इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे महात्मा गांधी ने अपने चरखा और सत्याग्रह के असाधारण शस्त्रों को लेकर, एक सशस्त्र साम्राज्यवादी राष्ट्र के विरुद्ध अपना सत्याग्रह आंदोलन चलाया, और केवल नमक कानून जैसे कानूनों को तोड़ते रहे जो

जनता की माग को स्पर्श भी नही करते थे, तो यह कोई नही समझ सका था कि कमजोर और विनम्र दीखने वाला वह व्यक्ति एक गुलाम राष्ट्र की आत्मा में क्रांति पैदा कर रहा है।

इस पर बल दिया जाना चाहिए कि गुरु गोविन्द नानक के उपदेशों से रचमात्र भी नही भटके। अगर उनका ऐसा इरादा होता तो वे अपने पूर्वजो के आदि-ग्रथ को सिखो के गुरु की प्रत्यक्ष मूर्ति के रूप मे स्थापित न कर जाते। उनकी अपनी रचनाएं भी उस अज्ञात सर्वेश्वर की स्तुति मे लिखी गयी है। वे विभिन्न धार्मिक विश्वासों का विरोध करने के उद्देश्य से नही लड़े थे बल्कि उन्होंने उसी समय शस्त्र उठाया, जब मानव आत्मा, उसकी जाति या बाह्य रूप चाहे जो रहा हो, को आततायियो ने अपमानित किया। और यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि उनकी ओर से लड़नेवालो में हिंदू भी थे और मुसलमान भी।

जिसने यह कहा था.

देवरा मसीत सोई
पूजा और निजाम ओही

उसको हिंदुओ या मुसलमानो का पक्षपाती कहना न्यायसगत नही है। और क्या गुरु नानक ने भी अपने देशभक्तिपूर्ण गीतो मे बाबर के अत्याचारो का विरोध नही किया था और क्या इसके लिए उन्हे बदी नही बनाया गया था? क्या स्वय गुरु नानक ने यह चेतावनी नही दी थी –

हुकुम करे मूरख गवार ?

शस्त्र धारण करना और मुगलो से बराबर टक्करे लेना गुरु गोविन्द सिह के पितामह गुरु हरिगोविन्द के समय से ही शुरू हो गया था। नानक के बाद से हर एक गुरु सच्चा बादशाह कहलाता था और उसका सारा ठाठबाठ राजसी होता था। राजकीय चिह्न के रूप में वह सिंहासन और चंवर का अधिकारी था। उसकी बात को हुक्म ही नही, ईश्वर की आज्ञा माना जाता था, और यह सब गुरु गोविन्द से दो शताब्दी पहले ही आरंभ हो गया था। जाति का भेद तो गुरु नानक ने ही अपने सिख समाज में मिटा दिया था, और लंगर (सार्वजनिक रसोई) का प्रचलन किया था जिसमें ऊच-नीच सब, बिना किसी भेदभाव के, एक पंगत में बैठकर खाते थे। और यह प्रथा गुरु के घराने मे उनके बहुत पहले से ही चली आती थी। गुरु नानक के समय में ही लौकिक कार्यों और मानवीय संबधो में नैतिकता (अखलाक) को मार्गदर्शक सिद्धांत स्वीकारा जा चुका था। गुरु नानक के इस आदर्श से गुरु गोविन्द सिह कभी भी विचलित नही हुए कि हर एक काम को ईश्वर की इच्छा के अधीन समझकर, उसके प्रति पूर्ण समर्पण की भावना से किया जाये।

तो फिर गुरु गोविन्द सिह की क्या विशिष्ट देन थी? उनकी विशिष्ट देन यही थी कि उन्होने आध्यात्मिक रूप से जाग्रत, लेकिन साथ ही इस धरती के प्रति सचेत लोगों का

ऐसा समुदाय स्थापित किया जिसे सारे समाज के स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करना था। जो न केवल आध्यात्मिक शाति से ही संतुष्ट हो और न मात्र भौतिक सुख से। उनकी विशिष्ट देन यह थी कि उन्होने एक सुसगठित, प्राणवान और जाग्रत समुदाय के द्वारा तमाम समाज का ही कायाकल्प कर दिया जो एक जाति विशेष का ही नही, बल्कि समस्त जनता का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था और जिसकी शक्ति का स्रोत जनता थी। उनकी देन यह थी कि उन्होने अग्नि और फौलाद की दीक्षा को एक कर्मनिष्ठ और उत्सर्गपूर्ण जीवन का अभिन्न अग बना दिया। यह भी उनकी देन थी कि लोकतंत्र की भावना व्यक्ति और समाज के अंतरतम मे व्याप्त हो गयी। फिर भी उन्होने सार्वभौम परमेश्वर को लौकिक और पारलौकिक क्रिया कलापों की प्रेरणा और चरम आदर्श माना था। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि गुरु नानक ने जीवन को एक नयी व्याख्या दी, और गुरु गोविन्द सिह ने मृत्यु को एक नया उद्देश्य प्रदान किया। गुरु गोविन्द सिह की देन का उल्लेख करते हुए इतिहासकार सैयद मोहम्मद लतीफ कहते है, "मच पर से बोलते हुए वे विधि कर्ता थे, युद्ध क्षेत्र मे विजेता थे, मसनद पर बैठते थे तो बादशाह थे और खालसाओ के समाज मे सत थे"।[1] इस प्रकार गुरु गोविन्द सिह ने मनुष्य को 'सपूर्ण मनुष्य' का अर्थ समझाया। स्वामी विवेकानन्द का भी यही मत था कि हिदू और मुसलमान को एक झडे के नीचे, इकट्ठा करके उन्हे एक ही ध्येय की पूर्ति मे लगाना भारत के इतिहास मे एक अद्वितीय घटना थी।

हमारी राय मे डाक्टर गोकुलचन्द नारग का यह कहना उचित ही है कि यद्यपि उन्होने गुलामी की उन बेड़ियो को नही तोड़ा जिन्होने राष्ट्र को जकड रखा था, पर उन्होने उसकी आत्मा को अवश्य मुक्त कर दिया और उसके हृदय मे स्वतंत्रता और प्रभुत्व की आकाक्षा जगा दी।[2]

दिल्ली का बादशाह जिस महिमा और पवित्रता से मडित था, उसके इद्रजाल को उन्होने तोड़ फेंका और मुगलों के अत्याचारो से उत्पन्न भय और आतक को दूर किया।

प्रोफेसर बनर्जी के शब्दो मे, यह निर्विवाद है कि गुरु गोविन्द सिह की गणना महान भारतीयो मे होनी चाहिए। उनका उद्देश्य महान और सराहनीय था और उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने जो साधन अपनाये वह उनके जैसा सर्वतोमुखी बुद्धिवाला व्यक्ति ही कर सकता था और हमें यह नही भूलना चाहिये कि गुरु गोविन्द सिह और चाहे जो रहे हो, सबसे पहले वे धार्मिक गुरु थे। अपने जीवन की घोर संकट की घड़ियो में उन्होने जैसा आचरण किया वैसा केवल एक सात्विक और उच्च आध्यात्मिक प्रवृति वाला, और ईश्वर की इच्छा के आगे सिर झुकाने वाला व्यक्ति ही कर सकता था। अपना घर बार और सर्वस्व शत्रुओ के हाथो में छोड़कर वे आनन्दपुर से विदा लेते है। उनकी सेना का ह्रास हो गया, उनका परिवार तितर बितर हो गया। उनकी पत्नी एक दिशा मे चली गयी, तो मा उनके दो छोटे बच्चो को लेकर किसी दूसरी अज्ञात जगह। इन परिस्थितियो में

1. हिस्ट्री ऑफ पजाब – 1860

2. ट्रासफरमेशन आफ सिखिज्म

वे चमकौर पहुचते है और तुरत मुगल और पहाड़ी सरदारो द्वारा घेर लिये जाते है। विरोधी परिस्थितियो के बावजूद अत्यत वीरतापूर्ण सघर्ष के बाद, जिसमे उनके दो प्यारे पुत्र और सबसे प्रिय साथी, एक के बाद एक, उनकी आखो के सामने मारे गये थे, वे चुपचाप निकल भागते है और शिकार के लिए पीछा किये जाने वाले जगली पशु के समान भेस बदलकर छुपे छुपे फिर रहे है। उसी समय उन्हे समाचार मिलता है उनकी मां और दोनो छोटे बेटो की अत्यंत करुणाजनक मौत का। यह सब कुछ उन्होंने बहुत सयत होकर सहा, और चुपचाप, शात भाव से काम करते है मानो कुछ हुआ ही न हो। ग्रथ साहब का नया सस्करण तैयार करते है, अपनी रचनाए भी उसमें जोड़तें हैं और मालवा के इलाके मे सिख धर्म की नीव को मजबूत बनाने में लगे हुए हैं। निश्चय ही यह सब न किसी राजनीतिज्ञ के बस की बात थी और न किसी सेनानी के। यह बात भी बड़े महत्व की है कि एक वर्ष[1] तक गुरु के निकट सपर्क मे रहने के बाद बहादुरशाह ने उनको दरवेश मानकर उनके साथ व्यवहार किया, और उनकी बहुत सी अचल सपत्ति को, जिस पर कानून के अनुसार राज्य का अधिकार होना चाहिए था, उनके उत्तराधिकारियो को दिलवा दिया। जिस व्यक्ति ने यह सीख दी थी कि मदिर और मस्जिद एक हैं, वह किसी वर्ग या समाज का शत्रु नही हो सकता था। उन्होने समाज के सामूहिक विवेक पर ही उसके नेतृत्व का भार छोड़ दिया था, क्योकि वे जानते थे कि आवश्यकता पड़ने पर उसमे से ही नेताओ का प्रादुर्भाव होगा। नवाब कपूरसिह और कलाल के जस्सासिह जैसे अज्ञात लोगो ने सिखो की स्वाधीनता की लड़ाई में जो पराक्रम दिखाया उससे जान पड़ता है कि गुरु की आशा मिथ्या नही गयी। अब्दाली की जिस आक्रमक शक्ति के सामने मराठा भी नही टिक पाये थे, उसे इन दोनो शूरवीरो ने विफल कर दिया, और पानीपत की उसकी महान विजय निष्फल ही गयी।[2]

जब डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् से, जो उन दिनो भारत के राजदूत थे, मार्शल स्तालीन ने पूछा कि हिंदुस्तान के धनाढ्यो और गरीबो के बीच की खाई को कैसे पाटेगे तो उन्होंने उत्तर दिया, जैसे हमारे इतिहास मे गुरु गोविन्द सिह ने हिंदुओ और मुसलमानो के बीच की खाई को पाटा था।

आशा के इस महान दूत की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सफलताओ का अधिक सर्वांगीण मूल्याकन उपयुक्त अवसर और स्थान पर होगा। यहा तो सिख इतिहासकार मंगू रतनसिंह के शब्दों मे यह कहकर समाप्त करना पर्याप्त होगा कि गुरु ने खालसा का निर्माण किया क्योंकि वे उस देश की सत्ता गरीबो को सौप देना चाहते थे ताकि वे भविष्य मे याद करे कि इतिहास मे गोविन्द सिंह नाम का एक गुरु भी हुआ था।[3]

---

1. हमारे विचार में लगभग छ: महीने अगस्त, 1707 से उस वर्ष के अत या अगले वर्ष के आरभ तक।

2. एवोल्यूशन ऑफ खालसा (भाग-2) ले प्रोफेसर आई बनर्जी, कलकत्ता, 1962, पृ सं 156-160

3. प्राचीन पथ प्रकाश – बी रतन सिंह

गुरु गोविन्द सिंह की 'वाणी' से कुछ उद्धरण

परमेश्वर का स्वरूप

चक्र चैहन अर बर्न जात, अर पाति नहिन जै
रूप-रंग अर रख भेख, कोऊ कह न सकत जै
अचल मूर्त अनभौ प्रकास, अमितोज कहि जै
कोट इन्द्र-इन्द्रान साहु-सहाण-गणि जै
त्रिभुवण महीप, सुर नर असुर नेत नेत वण त्रिण कह
तव सर्वनाम कथै कवन, कर्म नाम बरनत सुमत

2 नमस्त अकाले, नमस्त कृपाले
नमस्तं अरूपे, नमस्तं अनूपे

नमस्त अनामे नमस्तं अठामे
नमस्तं अकर्मं नमस्तं अधर्मं

नमस्त सो एके, नमस्तं अनेके
नमस्त अमज़बे, नमस्तस्त अजबे

नमो सर्व करता, नमो सर्व हरता
नमो कालकाले, नमो सर्वद्याले
नमो सर्व धधे, नमो सत् अबन्धे

नमो जोग जोगे नमो भोग भोगे
नमो चन्द्र चन्द्रे नमो भान भाने
नमो गीत गीते नमो तान ताने
नमो नृत्य नृत्ये नमो नाद नादे
नमो पान पाने नमो बाद बादे
नमो नित ·रायने नमो क्रूर कर्मे

नमो सर्व रोगे, नमो सर्व भोगे
नमो अंधकारे नमो तेज तेजे

देस और न भेस जाकर रूप रेख न राग
जत्र दिसा तत्र बिसा है पैर्ल्यो अनुराग ।

(जाप साहब)

संन्यास की व्याख्या

रे मन ऐसो कर संन्यासा ।
बन से सदन सबै कर समझो मनही मांहि उदासा ।
जप की जटा, जोग को मंजन, नेम के नखन बढ़ाओ
ज्ञान गुरू आतम उपदेसो, नाम भभूत लगाओ ॥
अलप अहार, सुलप सी निद्रा, दया छिमा तन प्रीत
शील सतोष सदा निरबाहिबो, ह्वैबो त्रिगुण अतीत ।
काम क्रोध अहंकार लोभ हठ, मोह न मनसो ल्यावे
तब ही आतम तत्त्व को दरसे, परम पुरुष पद पावे ।
(शब्द हज़ारे)

प्रभु से विनती

प्रभुजू तो कह लाज हमारी ।
नीलकंठ नरहर नारायन, नील बसन बनवारी
परमपुरुष परमेसर स्वामी, पावन पवन अहारी ।
माधव महाजोत मद-मर्दन, मान मुकुन्द मुरारी
निरविकार निर्जुर निद्रा बिन, निरबिख नर्क निवारी
कृपासिंधु काल त्रय दरसी, कुकृत प्रासनकारी
धनुर-बान धृतमान धराधर, अन विकार असिधारी
हो मतमंद चरन शरनागत, कर गह लेहु उबारी ।
(शब्द हज़ारे)

खालसा की परिभाषा

जागत जोत जपै निसि बासर, एक बिना मन नैकु न आने
पूरन प्रेम प्रतीत सजै, व्रत गौर मढ़ी मठ भूल न माने ।
तीरथ दान दया तप सजम, एक बिना नहि ए पहचाने
पूरन जोत जगै घट मे तब खालसा ताहिं नखालस जाने ।

याचना

दे शिव बर मोहि एहे, शुभ कर्मन ते कबहु न टरौं,
न डरौं अरि सों जब जाय लरौं, निश्चय कर अपनी जीत करौं ।
अर सिख हौं अपने ही मन को, ए लालच हौं गुन तो उचरौं
जब आव की औध निदान बने, अत ही रण मे तब जूझ मरौं ।

अकाल स्तुति

तव प्रसादि ॥ कवित्त ॥

कतहू सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ, कतहूं अचेत हुइकै सोवत अचेत हो ।
कतहू भिखारी हुईकै मांगत फिरत भीख, कहूं महादानि हुइकै मांगिओ धन देत हो ।
कहूं महाराजन को दीजत अनंत दान, कहूं महाराजन ते छीन छित लेत हो ।
कहूं बेद रीत कहू तासिओ बिपरीत, कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सरगुन समेत हो ॥
कहूं जछ गंधव उरग कहूं बिदिआधर कहूं भए किंनर पिसाच कहूं प्रेत हो ।
कहूं हुइकै हिंदुआ गाइत्री को गुपत जपिओ कहूं हुइकै तुरका पुकारे बांग देत हो ।
कहू कोक काब हुइकै पुरान को पड़त मत कतहूं कुरान को निदान जान लेत हो ।
कहूं बेद रीत कहूं तासिओ बिपरीत, कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सरगुन समेत हो ॥
कहूं देवतान के दिवान भै बिराजमान, कहूं दानवान को गुमान मत देत हो ।
कहूं इंद्र राजा को मिलत इंद्र पदवी सी, कहूं इंद्र पदवी छपाइ छीन लेत हो ।
कतहूं बिचार अबिचार को बिचारत हो, कहूं निज नार परनार के निकेत हो ।
कहूं बेद रीत कहूं तासिओ बिपरीत, कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सरगुन समेत हो ॥

कहूं ससत्र धारी कहूं बिदिआ के बिचारी, कहूं मारत अहारी कहू नार के नकेत हो ।
कहूं देव बानी कहूं सारदा भवानी कहूं मगला म्रिड़ानी कहूं सिआम कहू सेत हो ।
कहू धरम-धामी कहूं सरब ठौर गामी कहू जती कहू कामी कहूं देत कहूं लेत हो ।
कहू बेद रीत कहू तासिओ बिपरीत कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सरगुन समेत हो ॥
कहू जटा-धारी कहू कंठी-धरे ब्रह्मचारी, कहूं जोग साधी कहूं साधना करत हो ।
कहू कान फारे कहूं डंडी है पधारे, कहू फूक फूक पावन को प्रिथी पे धरत हो ।
कतहू सिपाही हुइ कै साधत सिलाहन कौ, कहू छत्री हुइकै अर मारत मरत हो ।
कहूं भूम भार कौ उतारत हो महाराज कहूं भव भूतन की भावना भरत हो ॥
कहू गीत नाद के निदान कौ बतावत हो कहूं नृतकारी चित्रकारी के निधान हो ।
कतहू पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो कतहूं मयूख ऊख कहूं मद पान हो ।
कहूं महा सूर हुइकै मारत मवासन कौ, कहू महादेव देवतान के समान हो ।
कहूं महादीन कहूं द्रब के अधीन कहूं बिदिआ मै प्रबीन कहू भूम कहू भान हो ॥
कहू अकलंक कहूं भारत मयंक कहू पूरन प्रजंक कहूं सुधता की सार हो ।
कहूं देव धरम कहूं साधना के परम कहू कुतसत कुकरम कहूं धरम के प्रकार हो ।
कहूं पउनहारी कहूं बिदिआ के बिचारी कहू जोग जती ब्रह्मचारी नर कहू नार हो ।
कहू छत्रधारी कहू छाला धरे छैल भारी कहू छक वारी कहू छल के प्रकार हो ॥
कहू गीत के गवैया कहू बेन के बजैया कहू नृत के नचैया कहू नर को अकार हो ।
कहू बेद बानी कहू कोक की कहानी कहू राजा कहू रानी कहू नार के प्रकार हो ।
कहू बेन के बजैया कहूं धेन के चरैया कहू लाखन लवैया कहू सुदर कुमार हो ।
सुधता की सान हो कि संतन के प्रान हो कि दाता महा दान हो कि निदोखी निरंकार हो ॥
निरजुर निरूप हो कि सुदर सरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दाता महा दान हो ।
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महामान हो ।
बिदिया के बिचार हो कि अदबै अवतार हो कि सिधता की सूरत हो कि सुधता की सान हो ।
जोबन के जाल हो कि काल हु के काल हो कि सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो ॥
कहू ब्रह्म बाद कहू बिदिआ को बिखाद कहू नाद को ननाद कहूं पूरन भगत हो ।
कहू बेद रीत कहू बिदिआ की पतीत कहूं नीत औ अनीत कहूं ज्वाला सी जगत हो ।
पूरन प्रताप कहू एकांती को जाप कहू ताप को अताप कहू जोग ते डिगत हो ।
कहूं बर देत कहूं छल सो छिनाई लेत सरब काल सरब ठौर एक से लगत हो ॥

तव प्रसादि ॥ सवैये ॥

स्रावग सुध समूह सिधान के देखि फिर्यो घर जोग जती के ।
सूर सुरारदन सुध सुधादिक संत समूह अनेक मती के ।

सारे ही देस को देखि रह्यो मत कोऊ न देखिअत प्रान पती के।
श्री भगवान की भाए कृपा हू ते एक रती बिनु एक रती के ॥
माते मतंग जरे जर सग अनूप उतग सुरग सवारे ।
कोट तुरंग कुरग के कूदत पउन के गउन को जात निवारे ।
भारी भुजान के भूप भली बिधि नावत सीस न जात बिचारे ।
एते भए तो कहा भए भूपत अत को नागे ही पाइ पधारे ॥
जीत फिरै सभै देस दिसान को, बाजत ढोल मिदग नगारे ।
गुजत गुढ़ गजान के सुदर हसत ही हयराज हजारे ।
भूत भविख भवान के भूपत कउन गनै नहि जात बिचारै ।
स्रीपत स्री भगवान भजे बिनु अंत को अत के धाम सिधारे ॥
तीरथ नहान दया दम दान सु खंजम नेम अनेक बिसेखे ।
बेद पुरान कतेब कुरान जिमी न जमान सबान को पैखे ।
पवन अहार जती जतधार, सबै सो विचार हजारक देदे ।
स्री भगवान भजे बिनु भूपति एक रती बिनु एक न लेखे ॥
सुध सिपाह दुरत दुबाह सु साजि सनाह दुरजान दलेगे ।
भारी गुमान भरे मन मे कर परबत पख हले न हलेगे ।
तोर अरीन मरोर मवासन माते मतंगन मान मलेगे ।
स्री पति स्री भगवान क्रिपा बिनु त्याग जहानु निदान चलेगे ॥
बीर अपार बड़े बरिआर अबिचारहि सार की धार भछैया ।
तोरत देस मलिद मवासन माते गजान के मान मलैया ।
गाड़े गड़ान के तोड़न हार सु बातन ही चक चार लेवैया ।
साहिब स्री सब को सिर नाइक जाचक अनेक सु एक दिवैया ॥
दानव देव फनिद निसाचर भूत भविख भवान जपेगे ।
जीव जिते जल मै थल मै पल ही पल मै सब थाप थपेगे ।
पुन्न प्रतापन बाढ़ जैत धुन पापन के बहु पुंज खपेगे ।
साध समूह पसन फिरे जग सत्र सभै अवलोक चपैगे ॥
मानव इद गजिद नराधप जौन तिलोक को राजु करेगे ।
कोटि इसनान गजादिक दान अनेक सुअंबर साज बरैंगे ।
ब्रह्म महेसर, बिसन सचीपत, अंत फसे जम फास परैगे ।
जै नर स्री पति के प्रस है पग, ते नर फेर न देह धरैंगे ॥
कहा भयो दोऊ लोचन मूदकै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ।
नात फिर्‌यो लिये सात समुदर लोक गयो परलोक गवायो ।

बास कियो बिखिआन सो बैठ कै ऐसे ही ऐसे सु बैस बितायो ।
साचू कहू सुन लेहु सभै जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो ॥
कहूं लै पाहन पूज धरो सिर कहू लै लिगु गरे लटकायो ।
कहूं लख्यो हरि अवाची दिसा महि कहू पछाह को सीस निवायो ।
कोऊ बूतान कौ पूजत है पसु कोऊ मृतान कौ पूजन धायो ।
कूर क्रिआ उरझ्यो सब ही जग स्त्री भगवान को भेदु न पायो ॥

तव प्रसादि ॥ तोमर छंद ॥

हरि जनम मरन बिहीन, दस चार चार प्रबीन ।
अक्लंक रूप अपार, अनछिज तेज उदार ॥1 ॥
अनभिज रूप दुरत, सब जगत भगत महंत ।
जस तिलक भू भित्त भान, दस चार चार निधान ॥2 ॥
अक्लंक रूप अपार, सम लोक लोक बिदार ।
कल काल करम बिहीन, सम करम धरम प्रबीन ॥3 ॥
अनखंड अतुल प्रताप, सम थापिओ जिह थाप ।
अनखेद भेद अछेद, मुख चार गावत बेद ॥4 ॥
जिह नेत निगम कहंत, मुख चार बकत बिअंत ।
अन भिज अतुल प्रताप, अन खड अमित अथाप ॥5 ॥
जिह कीन जगत पसार, रचिओ बिचार बिचार ।
अनंत रूप अखंड, अतुल प्रताप प्रचड ॥6 ॥
जिह अंड ते ब्रह्मंड, कीने सु चौदह खंड ।
सम कीन जगत प्रसार, अव्यक्त रूप उदार ॥7 ॥
जिह कोटि इंद निपार, कई ब्रह्म बिसन बिचार ।
कई राम किसन रसूल, बिनु भगत को न कबूल ॥8 ॥
कई सिंध बिंद नगिंद्र, कई मच्छ कच्छ फनिंद ।
कई देव आदि कुमार, कई क्रिसन बिसन अवतार ॥9 ॥
कई इंद्र बार बुहार, कई बेद अरू मुख चार ।
कई रुद्र छुद्र सरूप, कई राम क्रिसन अनूप ॥10 ॥
कई कोक काब बढ़ंत, कई बेद भेद कहंत ।
कई सास्त्र सिम्रिति बखान, कहूं कथत ही सु पुरान ॥11 ॥
कई अगन होत करंत, कई उर्ध ताप दुरंत ।
कई उर्ध बहु संन्यास, कहूं जोग भेस उदास ॥12 ॥

कहूं निवली करम करंत, कहू पउन अहार दुरंत ।
कहू तीरथ दान अपार, कहूं जग करम उदार ॥13 ॥
कहूं अगन होत्र अनूप, कहूं न्याई राज बिभूत ।
कहू सास्त्र सिम्रिति रीत, कहूं बेद सिओ बिप्रीत ॥14 ॥
कहूं देस देस फिरंत, कहूं एक ठौक इसथंत ।
कहू करत जल महि जाप, कहूं सहत तन पर ताप ॥15 ॥
कहूं बास बनहि करत, कहूं ताप तनहि सहंत ।
कहू ग्रिहसत धरम अपार, कहूं राज रीत उदार ॥16 ॥
कहूं रोग रहत अभरम, कहूं करम करत अकरम ।
कहू सेख ब्रह्म सरूप, कहूं नीत राज अनूप ॥17 ॥
कहूं रोग सोग बिहीन, कहू एक भगत अधीन ।
कहूं रक राज कुमार, कहूं बेद ब्यास अवतार ॥18 ॥
कई ब्रह्म बेद रटत, कई सेख नाम उचरंत ।
बैराग कहूं सन्आस, कहू फिरत रूप उदास ॥19 ॥
सब करम फोकट जान, सब धरम निहफल मान ।
बिन एक नाम अधार, सब करम भरम बिचार ॥20 ॥

तव प्रसादि ॥ लघुनिराज छंद ॥

जले हरी । थले हरी । छिते हरी । नभे हरी ॥1 ॥
गिरे हरी । गुफे हरी । छिते हरी । नभे हरी ॥2 ॥
ईहां हरी । ऊहा हरी । जिमी हरी । जमा हरी ॥3 ॥
अलेख हरी । अभेख हरी । अदोख हरी । अद्वैख हरी ॥4 ॥
अकाल हरी । अपार हरी । अछेद हरी । अभेद हरी ॥5 ॥
अजत्र हरी । अमंत्र हरी । सुतेज हरी । अतंत्र हरी ॥6 ॥
अजात हरी । अपात हरी । अमित्र हरी । अमात हरी ॥7 ॥
अरोग हरी । असोक हरी । अभरम हरी । अकरम हरी ॥8 ॥
अजै हरी । अभै हरी । अभेद हरी । अछेद हरी ॥9 ॥
अखंड हरी । अभंड हरी । अडंड हरी । प्रचंड हरी ॥10 ॥
अतेव हरी । अभेव हरी । अजैव हरी । अछैव हरी ॥11 ॥
भजौ हरी । थपो हरी । तपो हरी । जपो हरी ॥12 ॥
जलस तुही । थलस तुही । नदिस तुही । नदस तुही ॥13 ॥
बिछम तुही । पतस तुही । छितस तुही । उरधस तुही ॥14 ॥

भजस तुअ । भजस तुअ । रटस तुअ । ठटस तुअ ॥15 ॥
जिमी तुही । जमा तुही । मकी तुही । मका तुही ॥16 ॥
अभू तुही । अभै तुही । अछू तुही । अछै तुही ॥17 ॥
जतस तुही । ब्रतस तुही । गतस तुही । मतस तुही ॥18 ॥
तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही ॥19 ॥
तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही ॥20 ॥

कर्मकाण्ड के विरोध में

तव प्रसादि ॥ कवित्त ॥

खूक मलहारीगज गदहा बिभूत धारी गिदूआ मसान बास करिउई करत है ।
घुघूमट बासी लगे डोलत उदासी म्रिग तरवर सदीव मोन साधे ईमरत है ॥
बिंद के सधैया ताहि हीज की बडैया देत, बदरा सदीव पाइ नागे ई फिरत है ।
अगना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक गिआन के बिहीन छीन कैसे कै तरत है ॥
भूत बनचारी छित छउना सभै दुधाधारी पउन के अहारी सु भुजग जानी अतु है ।
त्रिण के बछैया, धन लोभ के तजैया तेतो गऊअन के जैया ब्रिख भैया मानीअतु है ॥
नभ के उडैया ताहि पंछी की बडैया देत बगुला बिड़ाल ब्रिक धिआनी ठानीअतु है ।
जेतो बड़े गिआनी तिनो जानी पै बखानी नाहि ऐसे न प्रपच मन भूल आनीअतु है ॥
भूम के बसैया ताहि भूचरी के जैया कहै नभ के उडैया सो चरैया के बखानी अै ।
फल के बछैया ताहि बांदरी के जैया कहै आदिस फिरैया तेतो भूत कै पछानी अै ॥
जल के तरैया को गंगेरी सी कहत जग आग के बछैया सो चकोर सम मानी अै ।
सूरज सिवैया ताहि कउल की बडैया देत चद्रमा सिवैया को कवी कै पहिचानी अै ॥
नाराइण कछ मछ तिंदुआ कहत सभ कउल नाभ कउल जिह ताल मैं रहतु है ।
गोपी नाथ गुजर गुपाल सब धेनचारी रिखीकेस नाम कै महत लहीअतु है ॥
माधव भवर औ अटेरु को कनैया नाम कंस को बधैया जमदूत कहीअतु है ।
मूड रूड पीटत न गूडता को भेद पावे पूजत न ताहि जाके राखे रहीअतु है ॥
बिस्वपाल जगत काल दीनदिआल बैरीसाल सदा प्रतिपाल जमजाल ते रहत है ।
जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रह्मचारी धिआन काज भूख पिआस देह सहत है ॥
निउली करम जल होम पावक पवन होम अधो मुख एक पाइ ठाढे न बहत है ।
मानव फनिंद देव दानव न पावै भेद बेद औ कतेब नेत नेत कै कहत है ॥
नाचत फिरत मोर बादर करत घोर दामनी अनेक भाउ करिओ ई करत है ।

चद्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज इंद्र सौ न राजा भव भूम को भरत है ॥
सिव से न तपसी आदि ब्रह्मा से न बेदचारी सनतकुमार सी तपसिआ न अनत है ।
गिआन के बिहीन काल फांस के अधीन सदा जुगन की चौकरी फिराए ई फिरत है ॥
एक सिव भए एक गए एक फेर भए रामचन्द्र क्रिसन के अवतार भी अनेक है ।
ब्रह्मा अरु बिसन केते बेद औ पुरान केते सिम्रिति समूहन कै हुइ हुइ बितए है ॥
मोनदी मदार केते असुनीकुमार केते अंस अवितार केते काल बस भए है ।
पीर औ पिगंबर केते गने न परत एते भूम ही ते हुइकै फेरि भूम ही मिलए है ॥
जोगी जती ब्रह्मचारी बडे बडे छत्रधारी छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलत है ।
बडे बडे राजन के दाबति फिरति देस बडे बडे राजन के दर्प को दलत है ॥
मान से महीप औ दिलीप कैसे छत्रधारी बडो अभिमान भुजदंड को करत है ।
दारा से दिलीसर दुरजोधन से मानधारी भोग भोग भूम अंत भूम मैं मिलत है ॥
सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस पोसती अनेक दा निवावत है सीस को ।
कहा भइओ मल जौ पै काढत अनेक डंड सो तौ न डंडौत असटांग अथतीस को ॥
कहा भइओ रोगी जौ पै डार्यो रह्यो उर्ध मुख, मन ते न मूंड निहरायो आद ईस को ।
कामना अधीन सदा दामना प्रचीन एक भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ ॥
सीस पटकत जाके कान पै खजूरा घसै मूड छटकत मित्र पुत्र हू के सोक सौ ।
आक को चरैया फल फूल को बछैया सदा बन को भ्रमैया अउर दूसरो न बोक सौ ॥
कहा भयो भेड जौ घसत सीस बिछन सौ, माटी को बछया बोल पूछ लीजे जोक सौ ।
कामना अधीन काम क्रोध मैं प्रबीन एक भावना बिहीन कैसे भेटे परलोक सौ ॥
नाचिओ ई करत मोर दादर करत सोर सदा घनघोर घन करिओ ई करत है ।
एक पाइ ठाढे सदा बन मै रहत बिछ फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत है ॥
पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै काग अउर चील देस देस बिचरत है ।
गिआन के बिहीन महा दान मै न हूजै लीन भावना यकीन दीन कैसे कै करत है ॥
जैसे एक स्वागी कहू जोगीआ बैरागी बने कबहू संनिआस भेस बन के दिखावई ।
कहू पउहारी कहू बैठे लाइ तारी कहू लोभ की खुमारी सौ अनेक गुन गावई ॥
कहू ब्रह्मचारी कहूं हाथ पै लगावै बारी कहू डडधारी हुइ के लोगन भ्रमावई ।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सो गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्मलोक पावई ॥
पंच बार गीदर पुकारे परे सीतकाल, कुंचर औ गदहा अनेक दा पुकारही ।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ कांसी बीच चीर चीर चोरटा कुठारन सौ मारही ।
कहा भओ फासी डार बूडिओ जल गंगधार डार डार फास ठग मार मार डारही ।
डूबै नरक धार मूडू गिआन के बिना बिचार भावना बिहीन कैसे गिआन के बिचारही ॥
ताप के सहे ते जो पै पाईऐ अताप नाथ तापना अनेक तन घाइल सहत है ।
जाप के कीए ते जो पै पायत अजाप देव पूदना सदीव तुही तुही उचरत है ॥

नभ के उडे ते जौ पै नाराइण पाइयत अनल अकास पछी डोलबो करत है ।
आग मै जरे ते गत राड की परत कर पताल के बासी किउ भुजग न तरत है ॥
कोऊ भओ मुडीआ संनिआसी कोऊ जोगी भओ कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती
अनमानबो ।
हिदु तरक कोऊ राफजी इमामशफी मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ॥
एक ही की सेव सबही को गुरुदेव एक एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ।
देहुरा मसीत सोई पूजा ओ निवाज ओई मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाऊ है ।
देवता अदेव जछ गंध्रब तुरक हिदू निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाऊ है ।
एकै नैन एके कान एके देई एकै बान खाक बाद आतस औ आब को रलाऊ है ।
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई एक ही सरूप सबै एक ही बनाऊ है ॥
जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुएकै फेरि आग मे मिलांइगे ।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है धूर के कनूका फेर धूर ही समाइगे ॥
जैसे एक नद ते तरग कोट उपजत है पान के तरग सबै पान ही कहाइगे ।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होई ताही ते उपज सबै ताही मै समांइगे ॥
केते कछमछ केते उन केरे करत भछ, केते अछ वछ हुई सपछ उड जाइगे ।
केते नभ बीच अछपछ की करै गे मछ, केतक प्रतछ हुई पचाइ खाइ जाइगे ।
जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा काल के बनाइ सबै काल ही चबाइगे ।
तेज जिउ अतेज मै अतेज जैसे तेज लीन ताही ते उपज सबै ताही मै समाइगे ॥
कूकत फिरत केते रोवत मरत केते जल मै डूबत केते आग मे जरत है ।
केते गगबासी केते मदीना मका निवासी केतक उदासी के भ्रमाए ई फिरत है ।
करवत सहत केते भूम मै गडत केते सूआ पै चढत केते दूख कउ भरत है ।
गैन मै उडत केते जल मै रहत केते गिआन के बिहीन जक जारे ई मरत है ॥
सोधहारे देवता विरोधहारे दानो बड़े बोधहारे बोधक प्रबोध हारे जापसी ।
घसहारे चंदन लगाइहारे चोआ चार पूजहारे पाहन चढाइहारे लापसी ।
गाह हारे गोरन मनाइ हारे मडी मट लीपहारे भीतन लगाइ हारे छापसी ।
गाइ हारे गंध्रब बजाइ हारे किंनर सब पच हारे पंडतत पत हारे तापसी ॥

तव प्रसादि ॥ सवैये ॥

दीनन की प्रतिपाल करै नित सत उबार गनीमन गारै ।
पछ पसू नग नाग नराधप सरब सभै सभ को प्रतिपारै ।
पोखत है जल मैं थल मैं पल मैं कलके नही करम बिचारे ।

दीन दयाल दया निधि दोखन देखत है पर देत न हारे ॥1 ॥
दाहत है दुख दोखन कौ दल दुजन के पलमै दल डारै ।
खड अखड प्रचंड पहारन पूरन प्रेम की प्रीत सभारै ।
पार न पाइ सकै पदमापति बेद कतेब अभेद उचारै ।
रोजी हि राज बिलोकत राजक रोख रुहान की रोजी न टारै ॥2 ॥
कीट पतग कुरंग भुजंगम भूत भविख भवान बनाए ।
देव अदेव खपे अहमेव न भेव लख्यो भ्रमसिओ भरमाए ।
बेद पुरान कतेब कुरान हसेब थके कर हाथ न आए ।
पूरन प्रेम प्रभाउ बिना पतिस्यो किन स्त्री पदमापति पाए ॥3 ॥
आद अनत अगाध अद्वैख सु भूत भविख भवान अभै है ।
अंति बिहीन अनातम आप अदाग अदोख अछिद्र अछैहै ।
लोगन के करता हरता जलमै थलमै भरता प्रभु वैहे ।
दीन दयाल दया कर स्रीपत सुदर स्री पदमापति एहै ॥4 ॥
काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भैहै ।
देह बिहीन सनेह सभो तन नेह बिरक्त अगेह अछैहै ।
जान को देत अजान को देत जमीन को देत जमान को दैहै ।
काहे को डोलत है तुमरी सुध सुंदर स्री पदमापति लैहै ॥5 ॥
रोगन ते अरू सोगन ते जल जोगन ते बहुभांत बचावै ।
सत्रु अनेक चलावत पाव तऊ तन एक न लागन पावै ।
राखत है अपनो कर दै कर, पाप समूह न भेटन पावै ।
और की बात कहा कहतो सिसु पेट ही के पट बीच बचावै ॥6 ॥
जछ भुजंग सु दानव देव अभेव तुमै सभही कर ध्यावै ।
भूम अकास पताल रसातल जछ भुजंग सभै सिर न्यावै ।
पाइ एकै नही पार प्रभाहू को नेत ही नेतहि भेद बतावै ।
खोज थकै सम ही खुजीआ सुर हार परे हरि हाथ न आवै ॥7 ॥
नारद से चतुरानन से रुमनारिख से सभहूं मिलि गायो ।
बेद कतेब न भेद लखिओ सभ हार परे हरि हाथ न आयो ।
पाइ सकै नहीं पार ऊमापत सिध सनाथ सनंतन ध्यायो ।
धिआन धरो तिह को मन मै जिहको अमितोज सभै जग छायो ॥8 ॥
बेद पुरान कतेब कुरान अभेद न्रिपान सभै पचहारे ।
भेद न पाइ सक्यो अनभेद को खेदत है अनछेद पुकारे ।
राग न रूप न रेख न रंग न साक न सोम न संगि तिहारे ।

आदि अनादि अगाध अभेख अद्वैख जप्यो तिनही कुल तारे ॥9 ॥
तीरथ कोट कीए इसनान दीए बहुदान महा ब्रित धारे ।
देस फिरिओ करि भेस तपोधन केस धरे न मिले हरि पिआरे ।
आसन कोट करे असटाग धरे बहु न्यास करे मुख कारे ।
दीन दिआल अकाल भजे बिन अंत को अंत के धाम सिधारे ॥10 ॥

तव प्रसादि ॥ कवित्त ॥

अत्रके चलैया छित छत्रके धरैया छत्रधारीओ के छलैया महा सत्रन के साल है ।
दान के दिवैया महा मान के बढ़ैया अवसान के दिवैया हैं कटैया जमजाल हैं ।
जुधके जितैया औ बिरुधको मिटैया महा बुधके दिवैया महा मानहू के मान है ।
गिआन हू के गिआता महां बुधता के दाता देव कालहू के काल महाकाल हू के काल हैं ॥
पूरबी न पार पावै हिंगुला हिमालै ध्यावै, गोर गरदेजी गुनगावै तेरे नाम है ।
जोगी जोग साधै पउन साधना कितेक बाधै आरब के आरबी अगाधे तेरे नाम हैं ।
फरा के फिरंगी मानै कधारी कुरेसी जानै पछमके पछमी पछानै निज काम है ।
मरहटा मघेले तेरी मनसो तपसिया करै, दिड़वी तिलंगी पहचानै धरम धाम है ॥
बग के बगाली फिरहंग के फिरगावाली दिली के दिलवाली तेरी आगिआ मै चलत है ।
रोह के रूहेले माघ देस के मघेले वीर बंगसी बुदेले पाप पुजको मलत हैं ।
गोखा गुनगावै चीन मचीन के सीस नयावै तिबती घिआई दोख देहके दलत है ।
जिनै तोहि ध्याओ तिनै पूरन प्रताप पाइओ सरब धन धाम फल फूल सो फलत है ॥
देव देवतान कौ सुरेस दानवान को महेस गंगधान कउ अभेस कहीअतु है ।
रंगमै रगीन राग रूप मै प्रबीन और काहू पै न दीन साध अधीन कहीअतु है ।
पाइए न पार तेज पुंजमै अपार सरब बिदिआके उदार हैं अपार कहीअतु हैं ।
हाथी की पुकार पल पाछै पहुचत ताहि चीटी की चिंघार पहिले ही सुनीअतु है ॥
केते इद्र दुआर केते ब्रह्मा मुखचार केते क्रिसना अवतार केते राम कहीअतु हैं ।
केते ससरासी केते सूरज प्रकासी केते मुंडीआ उदासी जोग दुआर दहीअतु हैं ।
केते मही दीन केते बिआस से प्रबीन केते कुभेर कुलीन केते जछ कही अतु हैं ।
करते हैं बिचार पै न पूरन को पावै पार ताहीते अपार निराधार लहीअतु हैं ॥
पूरन अवतार निराधार है न पारावार पाइऐ न पार पै अपार कै बखानीऐ ।
अद्वै अबनासी परम पूरन प्रकासी, महा रूपहूं के रासी हैं अनासी कैकै मानीऐ ।
जुत्रहुं न जात जाकी बापहू न माइ ताकी पूरन प्रभा की सु छटा कै अनमानीऐ ।

तेजहुं को तंत्र हैं कि राजसी को जत्र है कि मोहनी को मत्र है निजत्र कैकै जानीऐ ॥
तेज हु को तरु हैं कि राजसी को सरु हैं कि सुधता को घरु हैं कि सिघता की सार है ।
कामना की खान है कि साधना की सान हैं, बिरक्तता की बान है कि बुधको उदार है ।
सुंदर सरूप है कि भूपन को भूप हैं कि रूपहूं को रूप हैं कि कुमत को प्रहार है ।
दीनन को दाता है गनीमन को गारक हैं, साधन को रछक हैं, गुनन को पहार हैं ॥
सिध को सरूप है कि बुध को बिभूत हैं कि क्रुध को अभूत हैं कि अछै अबिनासी हैं ।
काम को कुनिंदा है कि खूबी को दिहंदा हैं गनीमन गरिंदा है कि तेज को प्रकासी हैं ।
काल हू के काल हैं कि सत्रन के साल हैं कि मित्रनको पोखत हैं कि ब्रिधता की बासी हैं ।
जोगहूं को जंत्र हैं कि तेजहु को तंत्र है कि मोहनी को मत्र हैं कि पूरन प्रकासी हैं ॥
रूप को निवास हैं कि बुध को प्रकास हैं कि सिधता को बास हैं कि बुध हूं को घरू है ।
देवन को देव हैं निरजन अभेव हैं अदेवन को देव हैं कि सुधता को सरु हैं ।
जान को बचैया है इमान को दिवैया हैं जमजाल को कटैया है कि कामना को कर हैं ।
तेज को प्रचंड हैं अखडण को खंड हैं महीपन को मंड है कि स्त्री है न नर हैं ॥
बिस्व को भरन है कि अपदा को हरन हैं कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकास हैं ।
पाइए न पार पारावारहू को पारजाको कीजत बिचार सुबिचार को निवास हैं ।
हिंगला हिमालै गावै हसबी हलबी ध्यावे पूरबी न पारपावै आसा ते अनास हैं ।
देवन को देव महादेव हू के देव हैं निरजन अभेव नाथ अद्वै अबिनास हैं ॥
अजन बिहीन हैं निरंजन प्रबीन हैं कि सेवक अधीन हैं कटैया जम जाल के ।
देवन के देव महादेव हूं के देवनाथ भूम के भुजैया हैं मुहीया महा बाल के ।
राजन के राजा महा साजहू के साजा महा जोगहूं के जोग हैं धरैया द्रुम छाल के ।
कामना के कर है कि बुधता को हर हैं कि सिधता के साथी हैं कि काल हैं कुचाल के ॥
छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर छपाकर कैसी छब कालइंद्री के कूल के ।
हंसनी सीसीहारू मीरासी हुसैनाबाद गगा कैसी धार चली सातो संध रूल के ।
पारासी पलाऊ गढरेपा कैसी रामपुर सोरासी सुरंगाबाद नीकेरही झूलके ।
चपासी चदोरी कोट, चादनी सी चांदागड़ि, कीरति तिहारी वही मालती सी फूलके ॥
फटकसी कैलास कमाऊ गढकांसी पुर सीसा सी सुरंगाबाद नीकै सोहीअतु है ।
हिमासी हिमालै हरहारसी हंलाबानेर हसकैसी हाजीपुर देखे माहीअतु है ।
चंदन सी चंपावती चंद्रमा सी चंद्रागिर चांदनी सी चांदागढ़ जोन जोहीअतु है ।
गगा सम गगधार बकानसी बिलंदावाद, कीरति तिहारी की ऊजिआरी सोहीअतु है ॥
फरासी फिरंगी फरासीस के दुरंगी मकरान के म्रिदंगी तेरे गीत गाईअतु है ।
मखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी, पौन के अहारी तेरो नामु धिआईअतु है ।

पूरब पलाऊ कामरूप औ कमाऊ सरब ठउर मै बिराजै जहा जहां जाईअतु है ।
पूरन प्रतापी अंत्र मंत्र ते अतापी नाथ कीरति तिहारी को न पार पाइअतु है ॥

विचित्र नाटक

दोहरा नमसकार स्री खड़ग को करौ सु हितु चितु लाइ ।
पूरन करौ गिरथ एहि तुम मोहि करहु सहाइ ॥1 ॥

श्रीकालजी की स्तुति

तव प्रसादि ॥ त्रिभंगी छंद ॥

खग खंड बिहड खल दल खंडं अति रण मड बरबड ।
भुज दंडं अखड तेज प्रचंडं जोति अमडं भान प्रभं ।
सुख संता करण दुरमति दरण किलबिख हरणं अस सरणं ।
जैजै जगकारण स्रिस्ट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं ॥2 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छंद ॥

सदा एक जैतयं अजूनी सरूपं, महादेव देव महा भूप भूपं ।
निरंकार नित्यं नरूप त्रिबाणं, कल कारणेयं नमो खड्ग पाणं ॥3 ॥
निरंकार त्रिबिकार नित्यं निरालं, न बिधं बिसेखं न तरुनं न बाल ।
न रंकं न रायं न रूपं न रेखं, न रंग न रागं अपारं अभेख ॥4 ॥
न रूप न रेखं न रगं न रागं, न नाम न ठामं महा जोति जागं ।
न द्वैखं न भेखं निरंकार नितयं, महां जोग जोगं सु परमं पवित्रं ॥5 ॥
अजेयं अभेयं अनामं अठामं, महा जोग जोगं महां काम काम ।
अलेखं अभेखं अनीलं अनादं, परेयं पवित्रं सदा निर्बिखादं ॥6 ॥
सुआदं अनादं अनीलं अनंतं, अद्वैखं अभेखं महेसं महतं ।
न रोखं न सोखं न द्रोहं न मोहं, न काम न क्रोधं अजोनी अजोहं ॥7 ॥
परेयं पवित्रं पुनीतं पराणं, अजेयं अभेय भविखयं भवाणं ।
न रोगं न सोगं सुनितयं नवीन अजायं सहायं परम प्रबीनं ॥8 ॥

सुभूतभविख भवान भवंय, नमो निर्विकार नमो निर्जुरय ।
नमो देव देव नमो राज राज, निरालब नितय सु राजधिराज ॥9 ॥
अलेखं अभेख अभूत अद्वैख, न राग न रग न रूप न रेख ।
महादेव देव महाजोग जोग, महा काम कामं महा भोग भोग ॥10 ॥
कहू राजस तामस सातकेय, कहू नार को रूपधारे नरेय ।
कहू देवीय देवत दैयत रूप, कहू रूप अनेक धारे अनूपं ॥11 ॥
कहू फूल ह्वैकै भले राज फूले, कहू भवर ह्वैकै भलीभाति भूले ।
कहू पवन ह्वैकै बहे बेगि ऐसे, कहू मो न आवै कथौ ताहि कैसे ॥12 ॥
कहू नाद ह्वैकै भलीभाति बाजे, कहू पारधी ह्वै धरे बान राजे ।
कहूं भ्रिग ह्वैकै भली भाति मोहे, कहू काम की जिऊ धरे रूप सोहे ॥13 ॥
नही जानि जाई कछू रूप रेख, कहा बास ताको फिरै कउन भेख ।
कहा नाम ताको कहा कै कहावै, कहा मै बखानो कहे मो न आवै ॥14 ॥
न ताको कोई तात मात न भाय, न पुत न पौत्र न दाया न दाय ।
न नेह न गेह न सैन न साथ, महा राज राज महा नाथ नाथ ॥15 ॥
परम पुरान पवित्र परेय, अनाद अनील असभ अजेय ।
अभेद अछेद पवित्र प्रमाथ, महा दीन दीन महा नाथ नाथ ॥16 ॥
अदाग अदग अलेख अभेख, अनत अनील अरूप अद्वैख ।
महा तेज तेज महा ज्वाल ज्वाल, महा मत्र मत्र महा काल काल ॥17 ॥
कर बान चापय क्रिपाण कराल, महातेज तेज बिराजै बिसाल ।
महादाड दाड सुसोह अपार, जिनै चरबीय जीव जगयं हजार ॥18 ॥
डमा डम डउरू सिता सेत छत्रं, हाहा हूह हास झमा झम अत्र ।
महां घोर सबद बजे सख ऐस, प्रलैकाल के काल की ज्वाल जैस ॥19 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छद ॥

घण घट बाज, घुण मेघ लाज ।
भयो सद एव, हड्यो नारधेवं ॥20
घुर चुंधरेय, धुण नेवरेयं ।
महानाद नादं, सुर निर्बिखाद ॥21 ॥
निरं माल राजं, लखे रुद्र लाजं ।
सुभे चार चित्रं, परम वित्र ॥22 ॥
महा गरज गरजं, सुणे दूत लरजं ।

स्रव स्रोण सोहं, महा मान मोहं ॥23 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छद ॥

स्रिजे सेतज जेरजं उतभुजेवं, रचे अडज खड ब्रह्मड एव ।
दिसा बिदिसायं जिमि आसमाण, चतुर बेद कथयं कराणं पुराणं ॥24 ॥
रचे रैण दिवस थपे सूर्य चंद्र, ठठेव दईव दानो रचे बीर बिद्र ।
करी लोह कलमं लिख्यो लेख माथं, सबै जेर कीने बली काल हाथ ॥25 ॥
कई मेट डारे उसारे बनाए, ऊपारे गडे फेरि मेटे उपाए ।
क्रिआ काल जूकी किनू ना पछानी, घन्यो पै बिहैहै घन्यो पै बिहानी ॥26 ॥
किते क्रिसन से कीट कोटै बनाए, किते राम से मेटि डारे ऊपाए ।
महांदीन केते प्रिथी माझ हूए, सभै आपनी आपनी अति मूए ॥27 ॥
जिते अऊलीआ अंबीआ होइ बीते, तित्यो काल जीता न ते काल जीते ।
जिते राम से क्रिसन हुइ बिसन आए, तित्यो काल खायिओ न ते काल घाए ॥28 ॥
जिते इंद्र से चद्र से होत आए, तित्यो काल खाया न ते काल घाए ।
जिते आउलीआ अंबीआ गऊस हैहै, सभै काल के अत दाड़ा तलै है ॥29 ॥
जिते मानधातादि राजा सहाए, सभै बांधिकै काल जै ले चलाए ।
जिनै नाम ताको ऊचारो उबारे, बिना साम ताकी लखे कोट मारे ॥30 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छंद ॥

चमक्कहि क्रिपाण । अभूतं भयाणं ।
धुण नेवराण, घुर घुघ्रयाणं ॥31 ॥
चतुर बाहं चारं, निजंटू सुधार ।
गदा पास सोहं, जयं मान मोह ॥32 ॥
सुभं जीभ जुआलं, सु दाड़ा करालं ।
बजी बब संख, ऊठे नाद बंखं ॥33 ॥
सुभं रूप सिआम, महा सोभ धाम ।

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छंद ॥

छबे चार चित्र, परेअपवित्रं ॥34 ॥
सिर सत छत्र सु भ्र बिराजं, लखे छैल छाइया करे तेज लाजं ।
बिसा लाल नैन मह. ... ोह, ढिग असुमाल हसं कोट क्रोह ॥35 ॥

कहू रूप धारे महाराजे सोह, कहू देव कनिआन के मान मोह ।
कहूं बीर ह्वैकै धरे बान पातं, कहू भूप ह्वैकै बजाए निसानं ॥36 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छद ॥

धनुर-बान धारे, छके छैल मारे ।
लए खग ऐसे, महाबीर जैसे ॥37 ॥
जुरे जंग जोरं, करे जुध घोर ।
क्रिपानिधि दिआलं, सदायं क्रिपालं ॥38 ॥
सदा एक रूप, सभै लोक भूपं ।
अजेअ अजायं, सरनियां सहायं ॥39 ॥
तपै खग पान, महा लोक दानं ।
भविखिअ भवेअ, नमो निरजुरेअं ॥40 ॥
मधो मान मूडं, सुभ रुड झुड ।
सिर सेत छत्रं, लस आथ अत्र ॥41 ॥
सुणे नाद भारी, त्रसे छत्रधारी ।
दिसा बसत्र राजं, सुणं दोख भाज ॥42 ॥
सुणं गद सद, अनत बिहद ।
घटा जाणु सिआम, दुत अभिराम ॥43 ॥
चतुर बाह चार, करीटं सुधारं ।
गदा सख चक्र, दिपै क्रूर बक्र ॥44 ॥

तव प्रसादि ॥ निराज छद ॥

अनूप रूप राजिअं, निहार काम लाजिअ ।
अलोक लोक सोभिअ, बिलोक लोक लोभिअं ॥45 ॥
चमकि चद्र सीसियं, रहियो लजाइ ईसयं ।
सुसोभ नाग भूखणं, अनेक दुस्ट दूखण ॥46 ॥
क्रिपाण पाण धारीय, करोर पाप टारीय ।
गदा ग्रिसट पाणियं, कमाण बाण ताणियं ॥47 ॥
सबद संख बजियां । घणकि घुमर गजिय ।
सरनि नाथ तोरीयं, ऊबार लाज मोरीयं ॥48 ॥
अनेक रूप सोहीयं, बिसेख देव मोहीयं ।

अदेव देव देवलं, क्रिपा निधान केवलं ॥49 ॥
सु आदि अंति एकय, धरे सरूप अनेकियं ।
क्रिपाण पाण राजई, बिलोक पाप भाजई ॥50 ॥
अलंक्रित सु देहय, तनो मनो कि मोहिय ।
कमाण बाण धारही, अनेक सत्र टारही ॥51 ॥
धमकि घुघर सुरं, नवंन नाद नूपरं ।
प्रजुआल बिजुलं जुल, पवित्र परम निरमल ॥52 ॥

तव प्रसादि ॥ तोटक छंद ॥

नव नैवर नाद सुर ब्रिमल, मुख बिजुल जुआल घण प्रजल ।
मदरा कर मत्त महा भभं, बन मै मनो बाघ बचा बबक ॥53 ॥
भव-भूत भविख भवान भव, कल कारण ऊबारण एक तुव ।
सम ठौड़ निरंतर नित नयं, ग्रिह मगल रूप तुयं सुभयं ॥54 ॥
दिड़ दाड़ कराल दे सेत ऊघ, जिह भाजत दुस्ट बिलोक जुधं ।
मद मत्त क्रिपाण कराल धर, जय सब्द सुरा सरय ऊचरं ॥55 ॥
नव किकण नेवर नाद हूअं, चल चाल सभा चल कप भूअ ।
घण घुंघर घंटण घोर सुरं, चर चार चरा चरय हुहर ॥56 ॥
चल चौदहू चक्रन चक्र फिर, बढवं घटवं हरीअं सुमर ।
दग जीव जिते जलयं थलय, अस को जु तवाइसुअ मलय ॥57 ॥
घट मादव मास की जाण सुभ, तन सावरे रावरेअ हुलस ।
रद पगत दामनी अ दमकं, घण घुघर घंट सुरं धमक ॥58 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छद ॥

घटा सावण जाण सयामं सुहायं, मणी नील नगिया लखं सीस निआय ।
महां सुदर सयामं महा अभिराम, महां रूप रूप महा काम काम ॥59 ॥
फिरै चक्र चउदहू पुरीय मधिआण, इसो कोण बीयं फिरै आइसाण ।
कहो कुंट कौनै बिखै भाज बाचै, सम सीस के संग स्री काल नाचै ॥60 ॥
करे कोट कोऊ धरे कोट ओटं, बचै गो न किउहू करै काल चोट ।
लिख जंत्र केते पड मंत्र कोटै, बिना सरन ताकी नही और ओटं ॥61 ॥
लिखं जत्र थाके पडं मंत्र हारै, करे काल ते अत लैके बिचारे ।
कितिओ तत्र साधे जु जनमं बिताइओ, भए फोकटं काज एकै न आइओ ॥62 ॥
किते नाम मूंदे भए ब्रह्मचारी, किते कंठ कंठी जटा सीस धारी ।

किते चीर कान जुगीस कहाय, सभे फोकट धरम कामं न आय ॥63 ॥
मधुकीटभै राछसे से बलीअ, सभे आपनी काल तेऊ दलीअ ।
भए सुभ नैसुभ स्रोणतबीज, तेऊ काल कीने पुरेजे पुरेज ॥64 ॥
बली प्रिथीआ मानधाता महीप, जिनै रथ चक्र कीए साथ दीपं ।
भुजं भीम भरथ जगं जीत डडयं, तिनै अंतके अंतकौ काल खंडयं ॥65 ॥
जिनै दीप दीपं दुहाई फिराई, भुजादंड दै छोणि छत्र छिनाई ।
करे जग कोट असं अनेक लीते, वहै बीर बैके बली काल जीते ॥66 ॥
कई कोट लीने जिनै दुरग ढाहे, किते सूरबीरान से सैन गाहे ।
कई जंग कीने सुसाके पवारे, वहै दीन देखे गिरे काल मारे ॥67 ॥
जिनै पातसाही करी कोट जुगियं, रसं आनरसं भली भात भुगियं ।
वहै अंत को पाव नागे पधारे, गिरे दीन देखे हठी काल मारे ॥68 ॥
जिनै खंडीअं दड धार अपार, करे चंद्रमा सूर चेरे दुआरं ।
जिनै इद्र से जीतकै छोड डारे, वहै दीन देखे गिरे काल मारे ॥69 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छद ॥

जिते राम हूए ॥ सभै अति मूए ॥
जिते किसन ह्वैहै, सभै अति जैहे ॥70 ॥
जिते देव होसी, सभै अत जासी ।
जिते बोध ह्वैहै, सभै अति छैहै ॥71 ॥
जिते देवराय, सुभै अत जाय ।
जिते दईत एस, तितियो काल लेस ॥72 ॥
नरसिंघा अवतार, वहे काल मार ।
बडो डडधारी, हणिओ काल भारी ॥73 ॥
दिज बावनैय, हणियो काल तेय ।
महां मछमुड, फधिओ काल झुंडं ॥74 ॥
जिते होइ बीते, तिते काल जीते ।
जिते सरन जैहे, तितिओ राख लैहै ॥75 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छंद ॥

बिना सरन ताकी न अऊरै ऊपायं, कहा देव दईत कहा रक राय ।
कहा पातसाहं कहा ऊमराय, बिना सरन ताकी न कोटै ऊपाय ॥76 ॥

जिते जीव जत सु दुनीअ ऊपाय, सभै अति काल बली काल धाय ।
बिना सरन ताकी नही और ओट, लिखे जत्र केते पडे मत्र कोट ॥77 ॥

तव प्रसादि ॥ निराज छंद ॥

जितेकी राज रक्य, हने सुकाल बक्यं ।
जितेक लोक पालय, निदान काल दालय ॥78 ॥
क्रिपाण पाण जे जपै, अनत थाट ते थपै ।
जितेक काल धिआइ है, जगति जीत जाइ है ॥79 ॥
बचित्र चार चितय, परमय पवित्रय ।
अलोक रूप राजिय, सुणे सु पाप भाजय ॥80 ॥
बिसाल लाल लोचन, बिअत पाप मोचन ।
चमक चद्र चारय, अघी अनेक तारय ॥81 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छद ॥

जिते लोक पाल, तिते जेर काल ।
जिते सूर चद्र, कहा इद्र बिद्र ॥82 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छद ॥

फिरै चौदहू लोकय काल चक्र ।
सभै हाथ बाधे खडे काल हजूर ॥83 ॥

तव प्रसादि ॥ सवैया ॥

कालही पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जाकी कला है ।
कालही पाइ भयो ब्रह्मा सिव काल ही पाइ भयो जुगीआ है ॥
कालही पाइ सुरा सुर गधब जछ भुजग दिसा बिदिसा है ।
और सकाल सभै बसि काल के एक ही काल अकाल सदा है ॥84 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजगप्रयात छद ॥

नमो देव देव नमो खड़गधार, सदा एक रूपं सदा निरबिकार ।
नमो राजस सातक तामसेअ, नमो निरबिकार नमो निरजुरेअ ॥85 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छंद ॥

नमो बाण पाण, नमो निरभयाण ।
नमो देव देव भवाण भवेअ ॥86 ॥

तव प्रसादि ॥ भुजंगप्रयात छद ॥

नमो खग खंड क्रिपाण कटार ॥
सदा एकरूपं सदा निरबिकार ॥
नमो बाण पाण नमो दड धारिय, जिनै चौदहू लोक जोत निथारिय ॥87 ॥
नमस्काररयं मोर तीर तुफगं, नमो खग अदगं अभेअं अभग ।
गदाय ग्रिस्ट नमो सैहथीअ, जिनै तुलीयं बीर बीयो न बीअ ॥88 ॥

तव प्रसादि ॥ रसावल छंद ॥

नमो चक्रपाणं, अभूत भयाण ।
नमो उग्र दाड़, महा ग्रिस्ट गाड ॥89 ॥
नमो तीर तोपं, जिनै सत्र घोप ।
नमो घोप पट, जिनै दुस्ट दटं ॥90 ॥
जिते ससग्र नाम, नमस्कार तामं ।
जिते असत्र भेय, नमस्कार तेय ॥91 ॥

तव प्रसादि ॥ सवैया ॥

मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब नवाज न दूसर तोसो ।
भूल छिमो हमरी प्रभु आप न भूलन हार कहू कोऊ मोसो ।
सेव करी तुमरी तिनके सभही ग्रिह देखत वेब भरोसो ।
या कलमे सभ काल क्रिपान के भारी भुजान को भारी भरोसो ॥92 ॥
सुंभ निसुभ के कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखै हन डारे ।
धूमर लोचन रूड अऊ मुंड से माहख से पल बीच निवारे ।
चामर से रणचिछुर से रकतिछण से झट दै झझकारे ।
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे ॥93 ॥
मुंडहु से मधुकीटभ से मुर से अघ से जिनि कोटि दले है ।
ओट करी कबहूंन जिनै रण चोट परी पट द्वै न टले है ।
सिच बिखै जे न बूडै निसाचर पावक बाण छुहे न जले है ।
ते अस तोर बिलोक अलोक सु लाज को छाडि कै भाजि चले है ॥94 ॥

रावण से महारावण से घटकानहु से पल बीज पछारे ।
बारदनाद अकंपन से जग जग जुरे जिन स्यो जम हारे ।
कुभ अकुभ से जीते सभे जग सातहू सिघ हथिआर पखारे ।
जे जे हुते अकटे बिकटे सु कटि करि काल क्रिपान के मारे ॥95 ॥
जो कहू कालते भाजके बचीअत तो किहु कंट कहो भजि जईये ।
आगेहू काल घरे अस गाजत छाजत है जिहते नसि आईये ।
ऐसो न कै गयो कोई सुदावरे जाहि ऊपाव सो घाव बचईये ।
जाते न छूटीए मूड कहू हसि ताकी न किओ सरणागति जईये ॥96 ॥

भारत मुद्रणालय, पचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित